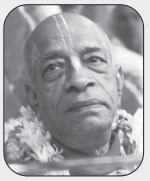

भगवद्दर्शन हरे कृष्ण आन्दोलन की अंग्रेजी पत्रिका **(Back to Godhead)** का अधिकृत हिन्दी संस्करण है, जिसकी शुरुआत श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ने सन् १९४४ में अपने गुरु श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वतीमहाराज की आज्ञानुसार की थी।

'भगवद्दर्शन' अखिल मानवता कोआध्यात्मीकृत करने का सांस्कृतिक साधन है। इसके ध्येय इस प्रकार से हैं:

१. सत्य और भ्रम,जड़ और चेतन, नित्य और अनित्य का भेद लोगों को समझाना।

२. भौतिकतावाद के दोष लोगों को बताना।

३. वैदिक संस्कृति के अनुसार आध्यात्मिक जीवन का प्रशिक्षण देना।

४. वैदिक संस्कृति की रक्षा और प्रचार करना।

५. भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के उपदेश के अनुसार भगवान् के दिव्य नाम का संकीर्तन करना।

६. पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करने और उनकी सेवा करने के लिए सारे जीवों की नम्र भाव से मदद करना।

बी.बी.टी. के समन्वयक एवं ट्रस्टी : श्रीमद् गोपालकृष्ण गोस्वामी महाराज, श्रीमद् जयाद्वैत स्वामी महाराज • **संपादक :** महाप्रभु दास (आर.के. माहेश्वरी) • **उपसंपादक :** वंशी बिहारी दास • **सहायक :** व्रजबासी दास, मुरारी गुप्त दास • **व्यवस्थापक :** सच्चिदानंद दास • **कला निर्माता :** सुंदररूप दास • **वित्तीय प्रबंधन :** सहदेव दास (एस.पी.माहेश्वरी), मंजरी देवी दासी • **प्रसार व्यवस्थापक :** पाण्डुरंग दास

©२००९ भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट,

मुद्रित एवं प्रकाशित: **उज्वल जाजू** द्वारा **भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट।** ;
प्रकाशन स्थान: **३३, जानकी कुटीर, जुहू, मुम्बई-४९;** मुद्रण: **मैग्रा ग्राफिक्स लि.** १०१ सी ॲन्ड डी, गव्हर्नमेन्ट इन्डस्ट्रीयल इस्टेट, कांदीवली (पश्चिम) मुंबई - ४०००६७. सम्पादक: **आर.के.महेश्वरी, ४, मुरलीमहल, खार (प.), मुम्बई-५२**

विषय-सूची

वर्ष २२ • अंक ३ • मार्च २००९

श्रील प्रभुपाद प्रवचन

२
संसार का भार कम करने हेतु
श्रील प्रभुपाद भगवद्गीता में वर्णित भगवान् के अवतरण के एक कारण की व्याख्या करते हैं।

६
जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति
शायद हम अपने दुःखों से मुक्ति के लिए उतने उत्सुक नहीं हैं, जितने भगवान्।

कृष्णभावना में आने का मेरा अनुभव

८
सलाखों के पीछे, किन्तु मुक्त
शायद हम अपने दुःखों से मुक्ति के लिए उतने उत्सुक नहीं हैं, जितने भगवान्।

शास्त्र चर्चा

१२
सुख की खोज में...
निश्चित ही इस संसार में सुख है, किन्तु अधूरा, दुःखों का स्रोत और शर्तों के साथ।

१४
योग्यता द्वारा ब्राह्मण
जन्म नहीं अपितु योग्यतायें और गुण व्यक्ति को ब्राह्मण बनाती हैं, जिनसे वह समाज की मार्गनिर्देशन पर पाता है।

महाभारत की विवादास्पद कथायें

१८
क्या वैदिक शास्त्र भेदभाव करते हैं?
शास्त्रों के निर्देशानुसार उनका अध्ययन कर ही हम उन्हें यथावत् समझ सकते हैं।

२०
भगवान् को देखने के लिए नेत्र
'क्या मैं भगवान् को देख सकता हूँ?' यह प्रश्न पूछने से पूर्व हमें पूछना चाहिए, 'क्या मुझमें वह योग्यता है?'

इस्कॉन जगत् ५
श्रील प्रभुपाद की वाणी २४
रात के सपने, दिन के सपने
श्रीभगवान् ने कहा २६
केन्द्र सूची ३०
दिनदर्शिका ३१
सम्पादकीय ३२
थोथे चने

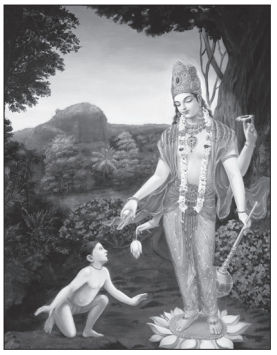

अपने समक्ष स्वयं भगवान् नारायण को देख बालक ध्रुव अवाक् रह गया। भौतिक इच्छायें लेकर आये ध्रुव का हृदय अब पूर्णतः शुद्ध हो चुका था।
चित्र - दीर्घ देवी दासी

'भगवद्दर्शन' पत्रिका साल में बारह बार प्रकाशित की जाती है। सदस्यता शुल्क- वार्षिक : १५० रुपए , द्विवार्षिक :३०० रुपए , पंचवार्षिक : ७०० रुपए। आप किसी भी महीने से सदस्य बन सकते हैं। मनीआर्डर *'भगवद्दर्शन'* के नाम से भेजा जाए। शुरू में भेजते समय या संपादक के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा नाम और पता पिनकोड के साथ साफ अक्षरों में लिखें। अगर पते में परिवर्तन हो तो तुरंत सूचना दें। चेक से रकम भेजनी हो तो मुंबई के बाहर के चेक के लिये १० रु. अधिक भेजें। चेक *'भगवद्दर्शन'* के नाम से भेजें।

संपादकीय कार्यालय : *'भगवद्दर्शन'*, ३०२, अमृत इंडस्ट्रियल एस्टेट, ३री मंजिल, पश्चिम एक्सप्रेस हाइवे मीरा रोड (पूर्व), ४०११०४ दूरभाषः-३२५५६७०१. पत्रव्यवहार के लिए btghindi@pamho.net पर लिखें।

हरे कृष्ण संस्था के भक्तों के नाम भगवान् या भगवद्भक्तों के नाम के बाद 'दास'(पुरुषों के लिए) या 'देवी दासी'(स्त्रियों के लिए) जोड़ कर दिये जाते हैं। उदाहरण के लिए-कृष्णदास, मध्वाचार्य दास या यमुना देवी दासी इत्यादि।

संसार का भार कम करने हेतु

एक विनाशकारी युद्ध का आयोजन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने पूरे वंश को पृथ्वी से वापस भेज दिया।

जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः ।
दुर्बलान्बलिनो राजमहान्तो बलिनो मिथः ।।
एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान् विभुः ।
यदून् यदुभिरन्योन्यं भूभारान् सञ्जहार ह ।।

''हे राजा, जैसे समुद्र में बड़े एवं शक्तिशाली जलचर छोटे और दुर्बल जलचर को निगल जाते हैं वैसे ही परम भगवान् ने पृथ्वी का भार कम करने हेतु शक्तिशाली यदुओं को दुर्बल यदुओं का वध करने एवं बड़े यदुओं को छोटों के वध में लगाया।'' (श्रीमद्भागवतम् १.१५.२५-२६)

अस्तित्त्व के लिए संघर्ष' और 'शक्तिशाली की विजय' के पीछे यही सिद्धान्त है। प्रकृति का नियम यह है कि शक्तिशाली दुर्बल पर शासन करता है। श्रीमद्भागवतम् (१.१३.४७) में कहा गया है –

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ।
फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ।।

''जिनके हाथ नहीं हैं वे हाथ वालों के शिकार हो जाते हैं और जिनके पैर नहीं हैं वे चार पैर वालो के। दुर्बल शक्तिशालियों के अधीन होते हैं और साधारण नियम यह है कि एक जीव दूसरे जीव का भोजन

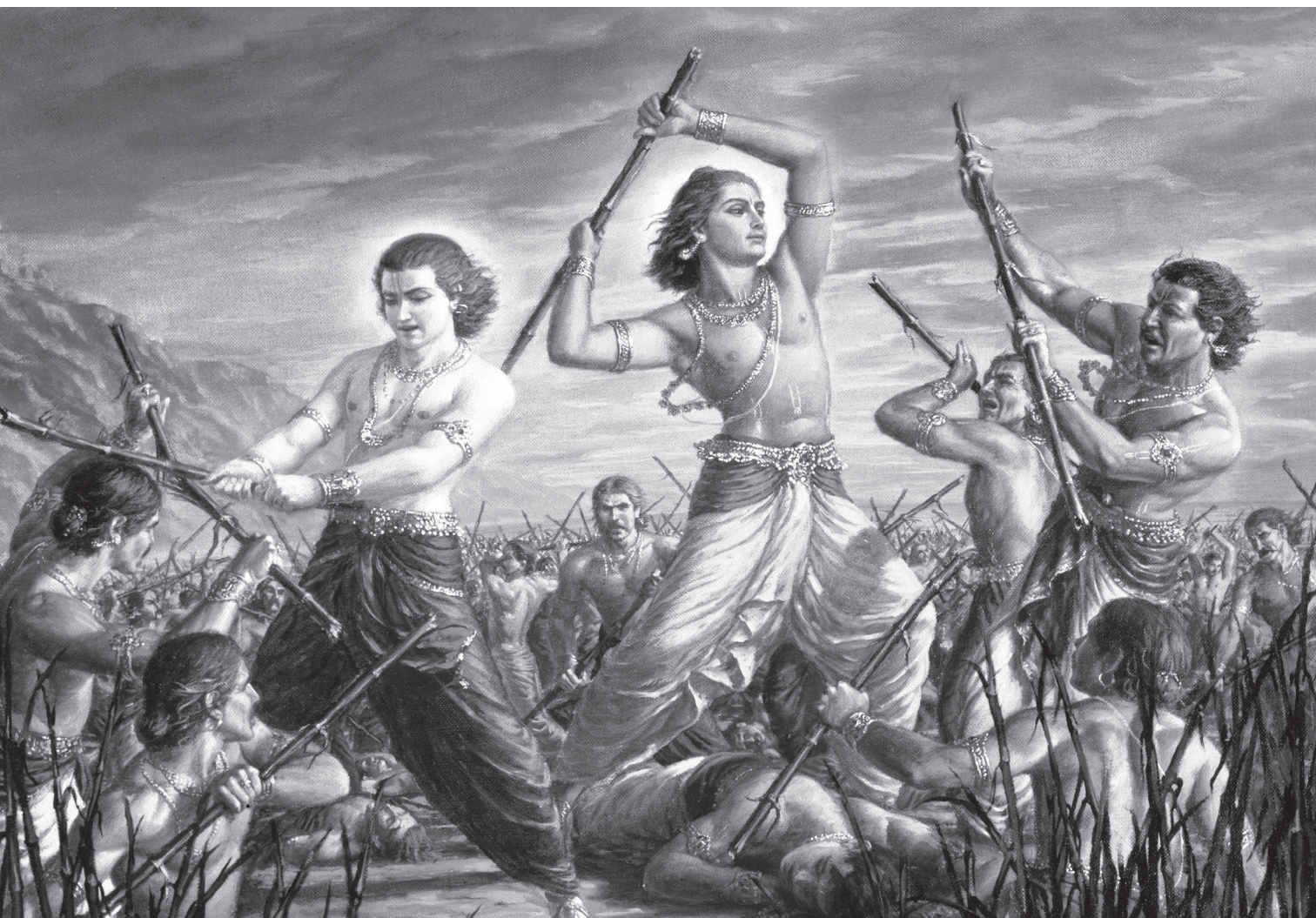

है।'' एक जीव दूसरे जीव को खाकर जीवित रहता है। जिनके हाथ नहीं हैं वे हाथ वाले पशुओं का भोजन बनते हैं।

जो पशुओं को खाते हैं वे पशु हैं, वे मानव नहीं हैं। यद्यपि उनका रूप मानव का है, उन्हें मानव नहीं समझा जा सकता। जब व्यक्ति सभ्य, सुसंस्कृत होता है, तभी उसे मानव कहा जा सकता है। यदि वह सभ्य नहीं है, यदि वह सुसंस्कृत नहीं है, यदि उसके केवल दो हाथ हैं – वह एक पशु है।

सभ्य संस्कृति का प्रारम्भ आर्य परिवारों में होता है। इसलिए उन्हें आर्य कहा जाता है जिसका अर्थ है ''प्रगत''। लोग स्वयं को आर्य घोषित करना चाहते हैं। हिटलर ने घोषणा की, ''जर्मन के लोग आर्य हैं यहूदी आर्य नहीं हैं।'' आप इस प्रकार अपने मत बना सकते हैं किन्तु वास्तविक आर्य वह है जिसने आध्यात्मिक चेतना में प्रगति की है।

आर्य सभ्यता में वैदिक संस्कृति थी। संस्कृति के अभाव में जीवन मात्र अस्तित्त्व के लिए संघर्ष है। तथाकथित आदि मानव जंगल में नग्न रहते हुए पशु खाता था। डार्विन का मत था कि प्रारम्भ में कोई सुसंस्कृत व्यक्ति नहीं था किन्तु धीरे-धीरे सभ्य लोगों का विकास हुआ। इसकी व्याख्या अत्यधिक स्पष्ट रूप से नहीं की गई है, डार्विन नहीं जानता था कि वास्तव में क्रमिक विकास (इवोल्यूशन) क्या है। क्रमिक विकास का अर्थ है सभ्य बनना या कृष्णभावना में प्रगति करना। वास्तविक मानव बनने हेतु आप अवश्य ही सुसंस्कृत एवं आध्यात्मिक चेतना में प्रगत होने चाहिए।

आध्यात्मिक चेतना का विकास

वह मानव जीवन है और उस चेतना का विकास धीरे-धीरे होता है। उस स्तर पर आने के लिए समाज को अवश्य ही विभाजित किया जाना चाहिए। श्रीकृष्ण भगवद्गीता (४.१३) में कहते हैं, *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः,* ''प्रकृति के तीन गुणों एवं उनसे सम्बन्धित कार्य के अनुसार मानव समाज के चार विभाग मेरे द्वारा बनाए गए हैं।'' पशुओं के बीच में कोई विभाजन नहीं होता। सभी एक ही स्तर पर हैं। किन्तु क्योंकि मानव जीवन का उद्देश्य कृष्णभावना का विकास करना है, उसके लिए किसी पद्धति का होना आवश्यक है। व्यक्ति को अवश्य ही वर्णाश्रम धर्म – चार समाजिक विभाग और चार आध्यात्मिक विभाग – के स्तर पर आना चाहिए। ये विभाग स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा बनाए गए हैं– *मया सृष्टं।*

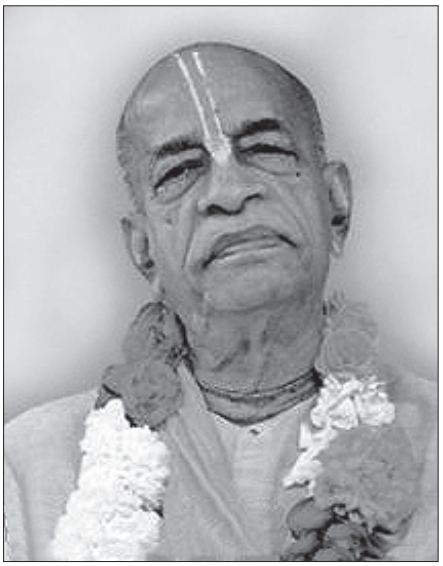

और इस व्यवस्था के द्वारा हम क्रमिक रूप से जीवन के उद्देश्य को समझ सकते हैं।

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोषकारणम्॥

परम भगवान् विष्णु की आराधना वर्ण एवं आश्रम में निर्धारित नियत कर्मों के पालन द्वारा की जाती है। परम भगवान् को सन्तुष्ट करने का और कोई मार्ग नहीं है। व्यक्ति को अवश्य ही वर्ण और आश्रम की पद्धति में स्थित होना चाहिए।'' (विष्णु पुराण ३.८.९)

जीवन का क्या उद्देश्य है? अभी हम भगवान् से अनासक्त हैं। हमारी यह स्थिति है। भौतिक जीवन का अर्थ है भगवान् से अनासक्ति, श्रीकृष्ण से अनासक्ति। यह अनासक्ति हमारे दुःख का कारण है।

मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह।
चत्वारोजज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक्॥

''ब्राह्मणों द्वारा नेतृत्व किए जाने वाले सभी सामाजिक विभागों का जन्म प्रकृति के तीन गुणों के अनेक प्रकार के संयोग द्वारा, परम भगवान् के विश्व रूप के चेहरे, भुजाओं, जाँघों एवं चरणकमलों द्वारा होता है। इस प्रकार चार आध्यात्मिक विभागों की भी उत्पत्ति होती है।'' (श्रीमद्भागवतम् ११.५.२) हम श्रीकृष्ण के अंश हैं, इसलिए हमें उसके अनुसार ही कार्य करना चाहिए। उदाहरणतः यदि हाथ अपनी सही स्थिति में है तब वह सही प्रकार से कार्य कर सकता है। किन्तु यदि मैं पैर को काट दूँ और उसे हाथ बनाँऊ, तब हम उसे खो बैठेंगे। व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के गुणों का वर्णन भगवद्गीता में किया गया है।

लोगों को अवश्य ही उनके गुणों के अनुसार प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, जैसे कि बीमारी के लक्षणों के अनुसार मरीज का उपचार किया जाता है। तब वह ठीक हो जाता है। ऐसा नहीं कि किसी भी मरीज को कोई भी दवाई दे दी जाए। दवाखाने में अनेक प्रकार की दवाईयाँ होती हैं। आप नहीं कह सकते, ''कोई भी दवाई काम करेगी।'' नहीं। डॉक्टर सही दवाई का चुनाव कर मरीज को देता है। तब मरीज ठीक होता है।

वर्णाश्रम धर्म का उद्देश्य हमें पाशविक स्थिति से मानवीय स्थिति तक लेकर आना है, जैसे कि स्कूल या कॉलेज में शिक्षा शिक्षित एवं अशिक्षित में भेद बताती है। मानव जीवन का अर्थ उस प्रकार के जीवन के संघर्ष के लिए नहीं है जिसमें बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। वह मानव जीवन नहीं है। वह स्वाभाविक है किन्तु आपको जीवन के परम लक्ष्य के साक्षात्कार हेतु अपनी स्वाभाविक स्थिति में संशोधन करना होगा। वह मानव जीवन है।

आध्यात्मिक चेतना का प्रारम्भ स्वयं को शरीर न समझकर आत्मा समझने से प्रारम्भ होता है, *अहं ब्रह्मास्मि। ब्रह्मन्* का अर्थ है आत्मा। मानव सभ्यता का प्रारम्भ इस समझ से होता है कि हम आत्मा हैं। अन्यथा *अनार्य जुष्टम्।* जब

अर्जुन युद्ध करने के लिए मना कर रहे थे, श्रीकृष्ण ने उन्हें डाँटा, ''यह *अनार्य जुष्टम्* है। यह *अनार्य* के लिए है, जो प्रगत नहीं हैं। व्यक्ति को अवश्य ही अपना कर्तव्य करना चाहिए। तुम क्षत्रिय हो और तुम्हारा कर्तव्य युद्ध करना एवं नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना है। इसलिए तुम इसे मना क्यों कर रहे हो?''

यहाँ उदाहरण दिया गया है, *जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः, अदन्त्य* का अर्थ है ''निगलना।'' यदु श्रीकृष्ण के वंशज हैं इसलिए वे अवश्य ही शक्तिशाली होंगे। वे सभी जगह युद्ध कर रहे थे और सभी जगह विजय प्राप्त कर रहे थे। इसलिए वह *भूभारान्* था, ''पृथ्वी पर भार।'' जब कोई बहुत अधिक शक्तिशाली हो जाता है और अपनी शक्ति को दुष्प्रयोग करता है, वह पृथ्वी पर भार बन जाता है।

आप अपनी शक्ति का दुष्प्रयोग नहीं कर सकते। आपको शक्ति भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा द्वारा प्राप्त होती है। यदि आप इसका दुष्प्रयोग करेंगे तब आप भार बन जायेंगे। जैसे ही भार होता है, *धर्मस्य ग्लानि* होती है। श्रीकृष्ण कहते हैं, *यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति* (भगवद्गीता ४.७)। जैसे ही शक्ति का दुष्प्रयोग होता है, *तदात्मानं सृजाम्यहम्,* वे आते हैं। जब श्रीकृष्ण ने देखा कि उनका वंश इतना अधिक शक्तिशाली हो रहा है कि वे अनावश्यक रूप से युद्ध कर रहे हैं, उनको मारने हेतु श्रीकृष्ण ने उनकी युद्ध करने की प्रवृत्ति को आपस में युद्ध करने में लगा दिया। और वे सभी मारे गए।

युद्धभावना का दुष्प्रयोग

यदि युद्ध की आवश्यकता है तो यह प्रामाणिक है। किन्तु आपको अपनी युद्धभावना का दुष्प्रयोग नहीं करना चाहिए। आज के समय में जैसे ही राजनीतिज्ञ देखते हैं कि वे सही प्रकार से व्यवस्थापन नहीं कर पा रहे हैं और देश में अव्यवस्था है, वे युद्ध की घोषणा कर देते हैं जिससे कि सभी का ध्यान उस ओर चला जाए और हलचल समाप्त हो जाए। उस प्रकार के युद्ध की आवश्यकता नहीं है। किन्तु युद्ध तो पहले से ही चल रहा है, जीवन के अस्तित्व के लिए संघर्ष।

श्रीकृष्ण हमें दिखा रहे हैं कि इस जगत् में कैसे सबकुछ चल रहा है। गर्भनिरोधको के द्वारा जनसंख्या कम करने की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति द्वारा, युद्ध, अकाल, महामारी द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में जनसंख्या स्वयं ही कम हो जाती है। आप जनसंख्या कम करने के लिए पाप क्यों कर रहे हो? अनावश्यक रूप से बच्चे पैदा मत करो और उनकी हत्या मत करो। यह धर्म है। यही सभ्यता है। आप अनावश्यक रूप से कुत्ते बिल्ली के समान बच्चे क्यों पैदा करते हो? श्रीमद्भागवतम् (५.५.१८) में कहते हैं, ''यदि आप अपने बच्चों को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त नहीं कर सकते तो माता या पिता मत बनो।'' वह माता-पिता का उत्तरदायित्व है। यह समझ वैदिक सभ्यता का भाग है।

मेरे गुरु महाराज कहा करते थे, ''मैं संन्यासी हूँ। मैं विवाहित नहीं हूँ और मैं विवाह करने योग्य भी नहीं हूँ। किन्तु यदि मैं कृष्णभावनाभावित बच्चों को पैदा कर सकता, मैं सैकड़ों बार विवाह करता।''

विवाह इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं है। विवाह अच्छे कृष्णभक्त बच्चों की उत्पत्ति के लिए है। हमारा उद्देश्य कुत्ते-बिल्ली पैदा करना नहीं है। अब अच्छे चरित्र और अच्छी बुद्धि वाले कृष्णभक्त सज्जनों को पैदा करने की आवश्यकता है।

केवल दिखावे के लिए

यदु अवांछित बच्चे नहीं थे। सभी देवता यदु बनकर श्रीकृष्ण लीला में भाग लेने आए थे। जब श्रीकृष्ण पृथ्वी पर आए, उनके अंतरंग सेवक भी अलग-अलग रूप लेकर सहायता करने के लिए प्रकट हुए। इसलिए जब श्रीकृष्ण वापस जाना चाहते थे, वे अपने पार्षदों के साथ वापस जाना चाहते थे, जो उनके साथ उनकी सहायता हेतु आए थे। इसलिए यदुओं का आपस में युद्ध बाह्य प्रदर्शन है। वास्तविक उद्देश्य था कि श्रीकृष्ण उन्हें अपने साथ ले जाना चाहते थे।

साधारणतया जब कोई आवश्यकता से अधिक शक्तिशाली बन जाता है और जगत् में अशान्ति पैदा करता है, वह भार है। और उस प्रकार के भार को श्रीकृष्ण की इच्छा के द्वारा समाप्त किया जाता है। उसके लिए कुछ विपत्ति जैसे युद्ध, महामारी या अकाल होना चाहिए और तब सबकुछ समाप्त हो जाता है।

मानव जीवन में हमारा कर्तव्य यह समझना है कि हम श्रीकृष्ण के शाश्वत अंश हैं और उनके साथ अपने सम्बन्ध को भूलकर हम इस भौतिक जगत् में आए हैं जहाँ जीवन के अस्तित्व हेतु कठोर संघर्ष करना होता है।

हम भौतिक शक्ति के सम्पर्क में हैं और हमारी इच्छा के अनुसार हमें विभिन्न शरीर जैसे जलचर, पेड़, पक्षी इत्यादि प्राप्त हो रहे हैं। वह हमारी समस्या है। इसलिए मानव सभ्यता तभी प्रारम्भ होती है जब लोग इस समस्या का समाधान करने का प्रयास करते हैं। अन्यथा वह पशु जीवन है, केवल जीवन के अस्तित्व हेतु संघर्ष। मानव जीवन भी संघर्ष के लिए है। यह आत्मसंयमित बनने के लिए है, पशुओं के समान बनने के लिए नहीं। पशु दिन-रात भोजन, इन्द्रियतृप्ति विशेषतः संभोग की खोज में ही रहते हैं। वह मानव सभ्यता नहीं है।

मानव जीवन के लिए तपस्या आवश्यक

मानव जीवन तपस्या हेतु बना है। आपको अपनी जिम्मेदारी जाननी चाहिए और तपस्या करना सीखना चाहिए। यह थोड़ी तपस्या है - व्याभिचार नहीं, जुआ नहीं, माँसाहार नहीं और नशापान नहीं। माँसाहार के बिना कौन मर रहा है? हमारे अनेक शिष्य हैं और दूसरे भी अनेक वैष्णव हैं, जो कभी माँस नहीं खाते। क्या वे मर रहे हैं? माँसाहार मात्र एक बुरी आदत है। इसलिए आपको अवश्य ही तपस्या का अभ्यास करना चाहिए। प्रारम्भ में माँस छोड़ना थोड़ा कठिन प्रतीत होगा। किन्तु इसमें कठिनाई नहीं है। एक

(शेष भाग पृष्ठ १३ पर)

मध्व-सम्प्रदाय प्रमुख द्वारा इस्कॉन संन्यासी का सम्मान

३ जनवरी उड्डुपी, कर्नाटक – परम पूजनीय भक्तिविकास स्वामी की ५२वीं व्यासपूजा के अवसर पर पुथिगे मठ, कृष्णमठ, उड्डुपी के प.पू.सुगुणेन्द्र तीर्थ स्वामी ने उड्डुपी में आयोजित एक कार्यक्रम में उनका सम्मान किया। अपने भाषण में श्रीपाद तीर्थ स्वामी ने कहा कि श्रीकृष्ण का अर्थ है ''आकर्षक'' और वे अपने भक्तों

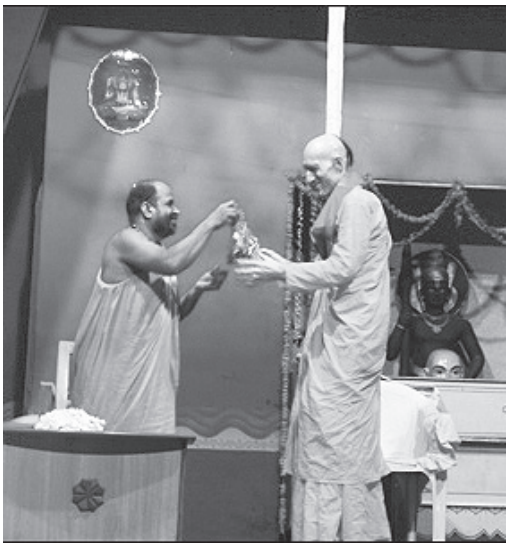

को आकर्षित करते हैं, और उसके बदले में भक्त भगवान् को आकर्षित करते हैं। भक्तिविकास स्वामी का गुणगान करते हुए स्वामीजी ने कहा कि उन्होंने अनेक भक्तों का आकर्षित किया और उन्हें तीर्थस्थलों तक लायें हैं।

रथयात्रा

पेनांग, मलेशिया – यहाँ आयोजित रथयात्रा में ४,००० लोगों ने भाग लिया। इस दौरान कोल्लटम् (डाँडिया नृत्य) एवं अन्य भारतीय सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये। कार्यक्रम का समापन आतिशबाजियों से किया गया।

क्लैंग, मलेशिया – यहाँ रथयात्रा के रथ के साथ दो अन्य रथ भी थे; एक में राधा-कृष्ण

के विग्रह और दूसरे में दस अवतार पर बने चित्र। पूरे मलेशिया में बीस से अधिक रथयात्राओं का आयोजन किया गया।

साथ ही साथ चेन्नई, बेलगाम (कर्नाटक) और बटाला (पंजाब) में भी रथयात्राओं का आयोजन हुआ।

जेलों में प्रचार

१८ दिसम्बर, नई दिल्ली- चौदह और पच्चीस वर्ष के बीच के एक हजार कैदियों ने इस्कॉन दिल्ली द्वारा दक्षिण एशिया की सबसे बड़ी जेल तिहाड़ जेल में आयोजित कार्यक्रम में भाग लिया।

४ जनवरी, जल्पैगुड़ी, प.बंगाल – इस्कॉन सिलिगुड़ी, प.बंगाल के भक्तों ने जल्पैगुड़ी के केन्द्रिय कारागृह में कार्यक्रम आयोजित किया। लगभग एक हजार कैदियों ने इसमें भाग लिया। कार्यक्रम में जिला न्यायाधीश, 'बार एसोशियेशन' के अध्यक्ष, एवं अन्य वरिष्ठ अधिकारी उपस्थित थे। कैदियों एवं अधिकारियों को भगवद्गीता वितरित की गई, एवं जेल के पुस्तकालय में भी उन्हें रखा गया।

'यू.आर.आई. ग्लोबल' की सभायें

दिसम्बर – इस्कॉन मायापुर ने संयुक्त राष्ट्र संघ के शान्ति कार्यक्रम की एक संस्था यू.आर.आई. (युनाइटेड रिलिजनस् इनिशियेटिव) की मेजबानी की। विभिन्न मतों के २०० प्रमुखों ने और ४४ राष्ट्रों से विभिन्न धर्मों के १०० युवा प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया।

मंदिर उद्घाटन

७ फरवरी, अरावडे, महाराष्ट्र – श्रीनित्यानन्द त्रयोदशी के शुभ अवसर पर यहाँ श्री श्रीराधा-गोपाल मंदिर का उद्घाटन हुआ। अरावडे प.पू.लोकनाथ स्वामी का जन्मस्थान है।

इस्कॉन के प्रमुख वरिष्ठ भक्तों सहित लगभग ६,००० लोगों ने तीन दिवसीय कार्यक्रम में भाग लिया।

जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति

शायद हम अपने दुःखों से मुक्ति के लिए उतने उत्सुक नहीं हैं, जितने भगवान्।

– श्रीपाद सत्स्वरूप दास गोस्वामी

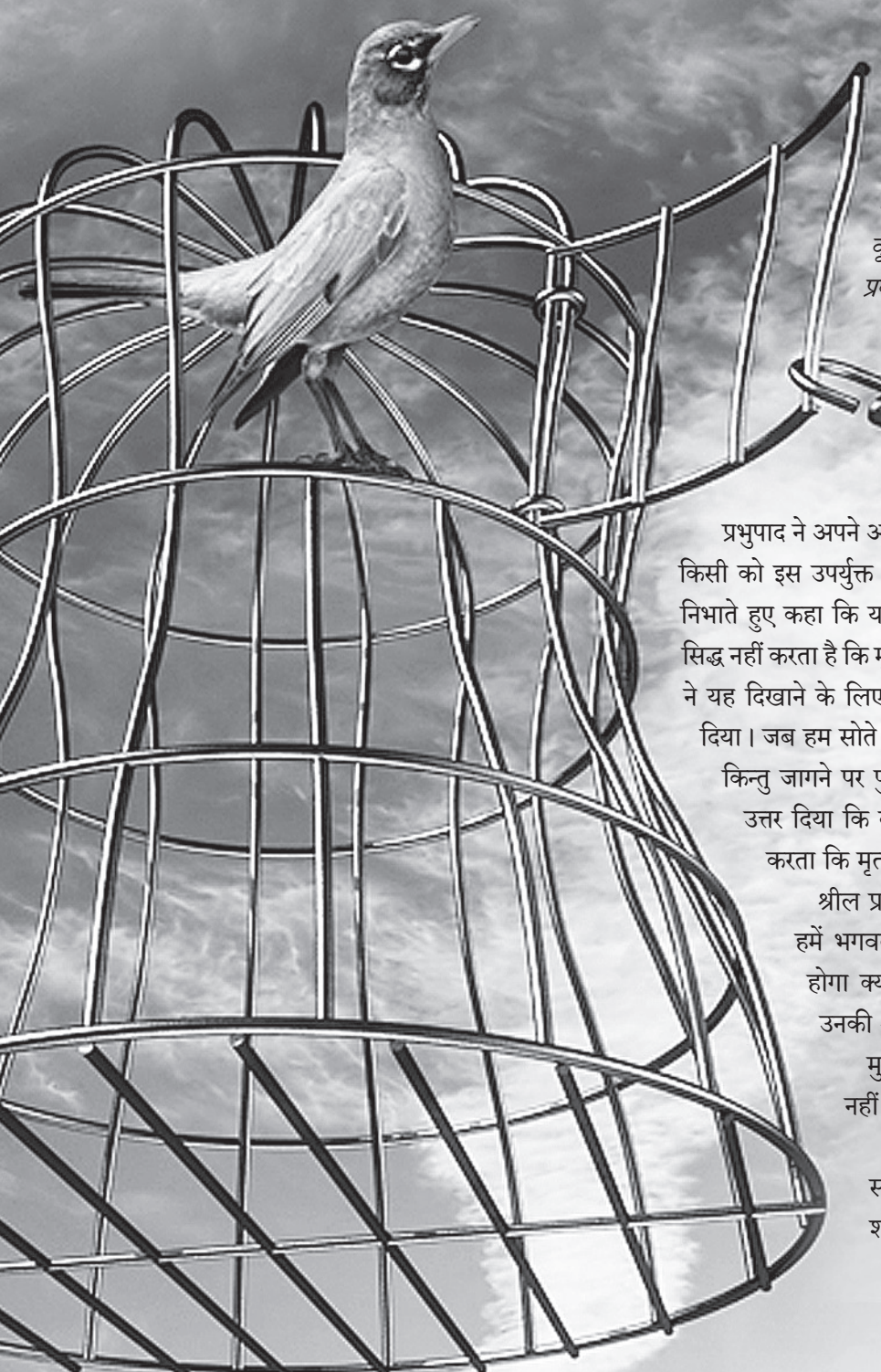

भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में शरीर में परिवर्तन के लिए एक अत्यधिक ही विशेष उदाहरण देते हैं। ''जिस प्रकार शरीरधारी आत्मा इस (वर्तमान) शरीर में बाल्यावस्था से तरुणावस्था में और फिर वृद्धावस्था में निरन्तर अग्रसर होता रहता है, उसी प्रकार मृत्यु होने पर आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। धीर व्यक्ति ऐसे परिवर्तन से मोह को प्राप्त नहीं होता।'' (भगवद्गीता २.१३)

सुबह की सैर के दौरान १९७४ में यूरोप में श्रील प्रभुपाद ने अपने अनुयायियों को चुनौती देते हुए पूछा क्या हममें से किसी को इस उपर्युक्त विषय पर आपत्ति है। मैंने विपक्ष की भूमिका निभाते हुए कहा कि यह कथन मात्र एक उदाहरण है, किन्तु यह यह सिद्ध नहीं करता है कि मृत्यु के समय हम शरीर बदलते हैं। श्रील प्रभुपाद ने यह दिखाने के लिए कि हम शरीर बदलते हैं एक दूसरा उदाहरण दिया। जब हम सोते हैं, हम स्वप्न देखते हैं कि हम दूसरे शरीर में हैं किन्तु जागने पर पुनः इसी शारीरिक चेतना में आ जाते हैं। मैंने उत्तर दिया कि वह अनुभव स्वप्न का है किन्तु यह सिद्ध नहीं करता कि मृत्यु के समय हम अपना शरीर बदलते हैं।

श्रील प्रभुपाद ने तब अपना तरीका बदलते हुए कहा। हमें भगवद्गीता (२.१३) के शब्दों को स्वीकार करना होगा क्योंकि यह श्रीकृष्ण के द्वारा कहा गया है और उनकी अधिकृतता पर कोई भी प्रश्न नहीं पूछ सकता। मुझमें विपक्षी की भूमिका निभाने की और हिम्मत नहीं थी, इसलिए मैं चुप रहा।

उपमाएँ विषय को समझने के लिए बहुत अच्छे साधन हैं किन्तु अन्ततः हमें श्रीकृष्ण के शब्दों, शास्त्रों को स्वीकार करना होगा। मैं उससे सन्तुष्ट

हो गया। वे परम भगवान् हैं जैसा कि अर्जुन द्वारा भगवद्गीता के दसवें अध्याय में स्वीकार किया गया है जिसकी पुष्टि असित, देवल एवं नारद जैसे महान् ऋषि मुनि भी करते हैं। उन्हें जन्म-मृत्यु के रहस्य का ज्ञान है और भक्त सदैव उनसे प्रत्यक्ष शब्दों का श्रवण कर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं एवं उन्हें स्वीकार भी करते हैं। अभक्त भी धीरे-धीरे श्रीकृष्ण को समझ सकते हैं, जैसे-जैसे वे भगवद्गीता को पढ़ते हैं और श्रीकृष्ण से आ रही गुरु-शिष्य परम्परा में गुरु के शब्दों को स्वीकार करते हैं। आत्मा की नित्यता एवं शरीर की अनित्यता और शरीर की स्थिति जैसे विषयों पर हम उनका मार्गदर्शन अनेक उपमाओं एवं तर्कों के आधार पर कर सकते हैं। किन्तु जो बुरे संग एवं पिछले जन्म के पापों के कारण जिद्दी हैं, शायद कभी भी श्रीकृष्ण के शब्दों एवं भगवान् की भक्ति को स्वीकार न कर पाएँ। उन्हें कोई श्रद्धा नहीं होती और वे दूसरे अश्रद्धालुओं द्वारा ऐसी क्रियाएँ करने के लिए प्रोत्साहित किए जाते हैं जो शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर की जाती हैं। ऐसे लोग मृत्यु के पश्चात् पुनः जन्म को स्वीकार नहीं करते। वे नहीं सोचते कि वे इस जीवन में अपने कर्मों के लिए जिम्मेदार हैं और भगवान् के नियमों को तोड़ने पर उन्हें पुनः जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसना होगा। उन्हें श्रद्धा नहीं है कि उनका नीचे की योनियों में पतन हो सकता है और इसलिए वे पशुओं की हत्या कर माँसाहार करने, नशापान करने, अवैध यौन सम्बन्ध रखने एवं जुआ खेलने में लिप्त रहते हैं। वे सोचते हैं कि मृत्यु के पश्चात् सबकुछ शून्य है और भगवान् के नियमों का पालन करने वाले सभी भगवद्भक्त आधारहीन धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करते हुए अनावश्यक रूप से स्वयं को जीवन के प्राकृतिक सुखों से वंचित रख रहे हैं।

कौन सही है, नास्तिक या आस्तिक?

क्या यह महत्वपूर्ण है? दार्शनिक पास्कल का कहना है कि वे भगवान् के अस्तित्व में श्रद्धा रखना चाहते हैं, चाहे वे वास्तव में नहीं भी हैं। वे तर्क देते हैं कि यह एक जुए के समान है। मान लीजिए यदि भगवान् वास्तव में हुए तो भगवान् और उनके नियमों को अस्वीकार करने से होने वाली हानि अत्यन्त महान् है, उस स्थिति की तुलना में जिसमें भगवान् नहीं हैं किन्तु फिर भी हम उनके नियमों को मानते हैं। ईसाई धर्म के शब्दों में उस स्थिति को ''स्वर्ग की हानि और नरक की पीड़ायें'' कहा जाता है।

अच्छा कर्म हमें अगले जीवन में इस भौतिक जगत् में अच्छा शरीर प्रदान करेगा किन्तु इससे हमें मुक्ति प्राप्त नहीं होगी।

श्रीकृष्ण सभी जीवों को थोड़ी मात्रा में स्वतन्त्रता दी है क्योंकि हम उनके अंश हैं और उनके गुणों (उनकी अनन्त स्वतन्त्रता) का कुछ अंश हममें भी आता है। यदि हम अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करते हैं हम कर्म के बन्धन में फँस जाते हैं, जिसका अर्थ है हम भौतिक जगत् के नियमों (क्रिया-प्रतिक्रिया) के और अधिक अधीन हो जाते हैं। कर्म के नियमों को न तो बदला जा सकता है और न ही उनसे बचा जा सकता है। यदि आप अग्नि को छूते हैं, आप अवश्य ही जल जायेंगे। इस कलियुग, में जो झगड़े एवं असहमति का युग है, ९०% से अधिक लोग कर्म के नियमों में फँसे हैं। इन्द्रियतृप्ति के लिए किया गया कोई भी स्वार्थी कार्य चाहे वह अच्छा हो या बुरा, यदि भगवान् को अर्पित न किया जाए तो कर्म के बन्धन में हमें और अधिक लिप्त कर देता है। अच्छा कर्म हमें अगले जीवन में इस भौतिक जगत् में अच्छा शरीर प्रदान करेगा किन्तु इससे हमें मुक्ति प्राप्त नहीं होगी। बुरा कर्म हमें इस ''अनित्य एवं दुःखमय'' भौतिक जगत् में और अधिक दुःखमय परिस्थिति में डालेगा।

किन्तु श्रीकृष्ण का सदैव यही प्रयास रहता है कि कैसे बद्धजीवों को जन्म-मृत्यु के इस चक्र से मुक्त किया जाए। भगवद्गीता में वे कहते हैं, ''जब भी और जहाँ भी धर्म का पतन होता है और अधर्म की प्रधानता होने लगती है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ।'' (भगवद्गीता ४.७) इस श्लोक के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''यह तथ्य नहीं है कि केवल भारत में भगवान् अवतरित होते हैं। वे कहीं भी और किसी भी काल में इच्छा होने पर प्रकट हो सकते हैं। वे प्रत्येक अवतार लेने पर धर्म के विषय में उतना ही कहते हैं, जितना कि उस परिस्थिति में जन-समुदाय विशेष समझ सकता है। किन्तु उद्देश्य एक ही रहता है - लोगों को भगवद्भावित एवं धार्मिक नियमों के प्रति आज्ञाकारी बनाना। कभी वे स्वयं प्रकट होते हैं तो कभी अपने प्रामाणिक प्रतिनिधि को अपने पुत्र या दास के रूप में भेजते हैं या वेश बदल कर स्वयं ही प्रकट होते हैं।'' (भगवद्गीता ४.७) लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व पश्चिम बंगाल में श्रीकृष्ण स्वयं के ही भक्त श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में लोगों को भगवद्भावनाभावित होने एवं शुद्धिकरण की सरल पद्धति सिखाने के लिए प्रकट हुए। उन्होंने भगवान् के पवित्र नामों का संकीर्तन एवं भक्तों की जीवनशैली पालन करना सिखाया। उन्होंने विशेष रूप से सभी दोषों का दूर करने वाले एवं सभी का उद्धार करने वाले महामन्त्र, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, की शिक्षा दी। इस संकीर्तन में भगवान् के पवित्र नामों का उच्चारण होता है और जब भी तीव्रता के साथ अन्य भक्तों के साथ इसका कीर्तन किया जाता है या माला पर जप किया जाता है, कोई भी अपनी जिह्वा एवं कानों के माध्यम से वास्तव में श्रीकृष्ण के सम्पर्क में आ सकता है। अन्य प्रकार के योग, ध्यान, यज्ञ इत्यादि वास्तव में

(शेष भाग पृष्ठ १७ पर)

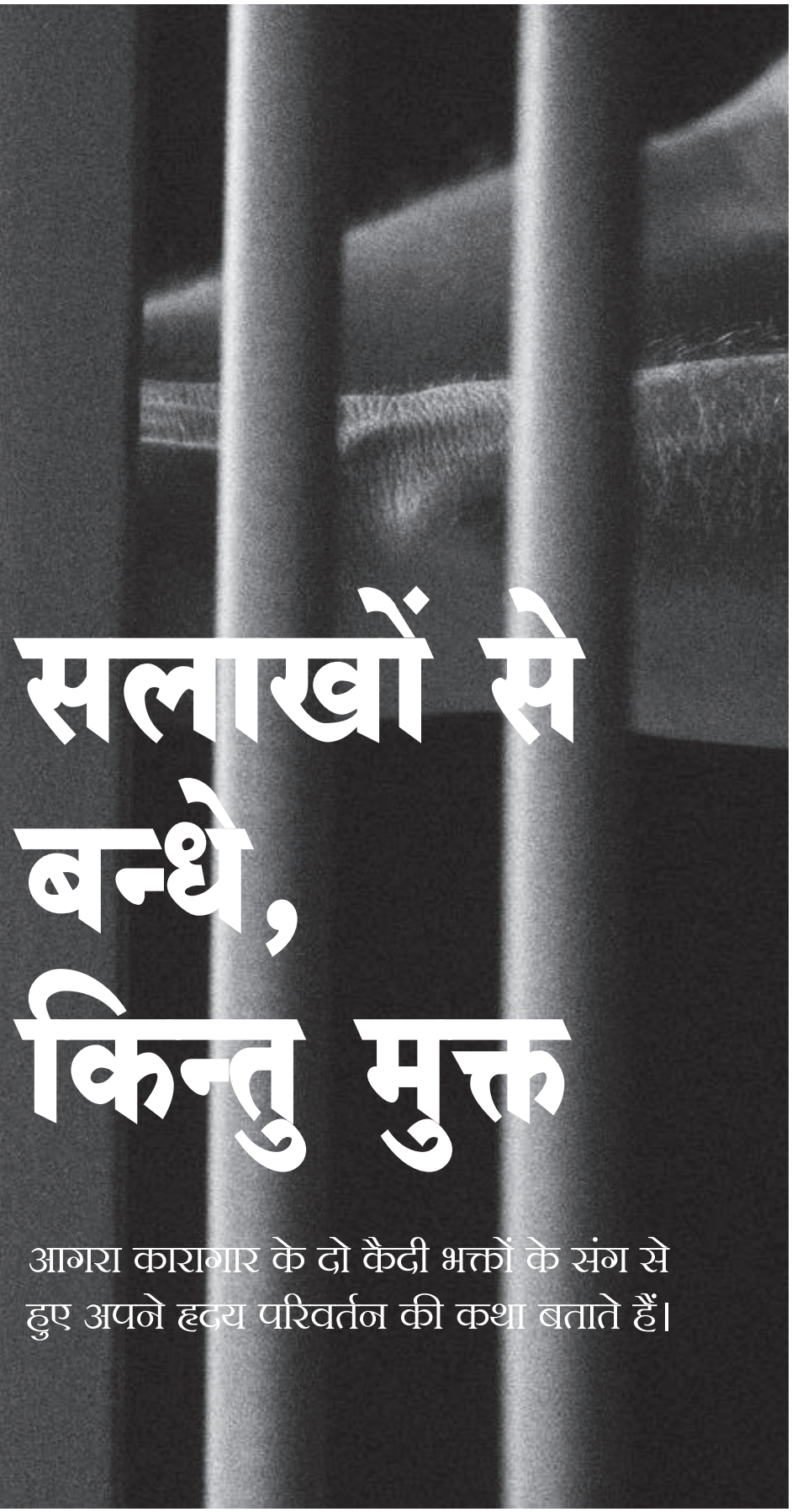

सलाखों से बन्धे, किन्तु मुक्त

आगरा कारागार के दो कैदी भक्तों के संग से हुए अपने हृदय परिवर्तन की कथा बताते हैं।

कारागार में आने से पहले अगस्त १९९५ में मैं सरकारी पी.जी.कॉलेज करोली में बी.एस.सी. द्वितीय वर्ष बायलॉजी में अध्ययन रत था। मैं अच्छी प्रकार से कठिन परिश्रम सच्ची लगन एवं निष्ठा द्वारा कॉलेज में सर्वप्रथम आने की तैयारी में जुटा था।

हमारा परिवार एक मध्यम श्रेणी में आता है तथा पिताजी खेती का काम करते थे। अगस्त के अन्त में मैं अपने गाँव में गया, जहाँ हमारी जमीन पर १५-२० साल से मन-मुटाव चल रहा था। उसके कारण हमारी दूसरे गुट के साथ मारपीट हो गई, जिसमें उनका एक व्यक्ति मर गया। फलस्वरूप हम सभी चारों भाई तथा पिताजी को आजीवन कारागार की सजा से दण्डित कर दिया गया।

और मैं पहुँच गया सलाखों के पीछे।

केन्द्रिय कारागार, भरतपुर में अपने आने का इतिहास बताते हुए कान्ताप्रसाद शर्मा अपने आगे के अनुभव बताते हैं।

कारागार का जीवन एक विचित्र प्रकार का होता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ जीवन यापन करना मेरे लिए एक बड़ा संघर्ष था। आन्तरिक रूप से मैं बड़ा परेशान एवं चिन्ताग्रस्त रहता। मेरे लिए कच्ची रोटियाँ एवं बेकार दाल समस्या थी, नहीं खाने पर भूखा रहना और खाने पर पेट खराब हो जाता। लघुशंका एवं दीर्घ शंका जाने के लिए भी सदैव प्रतीक्षा करनी पड़ती। कई लोगों के अकारण गलत व्यवहार से भी मैं परेशान था। अनुभवहीन होने के कारण मैं अधिकारियों को भी इसकी सूचना नही दे पाता। प्रारम्भिक अवस्था में काफी असन्तुष्ट रहता। कारागार में जीवन यापन करने से मैंने सबसे अधिक यह सीखा कि विभिन्न प्रकार के व्यवहार वाले लोगों के साथ सामन्जस्यता बनाये रखनी चाहिए। जातिवाद तथा अस्पृश्यता के भेदभाव को मैं बिल्कुल भूल गया। धर्मनिरपेक्षता का पाठ भी मैंने यहीं सीखा। विभिन्न प्रकार की इच्छाओं का दमन, मन का नियंत्रण एवं जीवन जीने की कला भी मैंने यहीं से सीखी।

मेरी राय अनुसार लगभग ७५ प्रतिशत कैदी कानून की अज्ञानतावश सजा भुगत रहे हैं। इसलिए कारागार में बन्दियों के अपराधों से निवृत्ति अच्छे संस्कारों एवं महान् सन्तों के सानिध्य में रहकर हो सकती है। इसलिए सत्संग की आज इस प्रतिकूल समय में बड़ी भारी आवश्यकता है।

हरे कृष्ण मन्त्र से जीवन परिवर्तन

कारागार जैसे स्थान पर जब मैं प्रतिकूल व विषम परिस्थितियों से जूझता हुआ जीवन-संघर्ष कर रहा था तो मुझे पता चला कि वृन्दावन धाम से कुछ भक्त जानकीदास के साथ जेल के मंदिर में आये हैं। जेल प्रशासन की अनुमति लेकर मुझे कुछ बन्दी भाईयों के साथ उस मंदिर में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जानकीदास तथा उनके साथ आये भक्तों के प्रवचन, संकीर्तन तथा हरे कृष्ण महामन्त्र के जप द्वारा मुझे विशेष आनन्द प्राप्त होने लगा। मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसे समय में इस अन्धकारमय जीवन में ऐसे महान् पुरुषों का संग प्राप्त हो जायेगा। लेकिन यह भी सम्भव हो गया।

जानकी दास प्रभु विशेष रूप से हरे कृष्ण महामन्त्र के जप संकीर्तन, भगवद्गीता पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने के लिए प्रेरित करते रहते हैं, और समय-समय पर हमारे साधकों को माला, माला की थैली, श्रीमद्भगवद्गीता इत्यादि निःशुल्क वितरण करते रहते हैं। साथ ही विभिन्न नियम एवं जप विधि को भी अच्छी प्रकार से समझाते हैं।

प्रारम्भिक समय में मुझे इनका अनुसरण करने में कुछ समस्यायें आईं थी, कई लोग जप करने पर मजाक करते और कहते 'बाबाजी बनना है क्या!'' वे कहते ''कारागार में भक्ति का उल्टा प्रभाव होता है।'' इसके पक्ष में वे अनेक उदाहरण भी प्रस्तुत करते। वे मेरे तिलक लगाने का भी उपहास उड़ाते, किन्तु मैं विचलित नहीं हुआ।

कुछ दिनों पश्चात् लोगों ने मेरा हँसी-मजाक करना बन्द कर दिया। मैं स्वयं को भी सन्तुष्ट अनुभव करने लगा। यदि कोई अन्य कैदी कुछ कहता तो मैं उसका भी बुरा नहीं मानने लगा। जप के प्रभाव से मुझे मानसिक शान्ति मिलने लगी और घर की याद भी कम सताने लगी। भक्तों की प्रेरणा से मैंने प्याज भी खाना बन्द कर दिया। प्याज नहीं खाने से मुझे बड़ी राहत मिली, अब मुझे उसकी गन्ध भी बुरी लगती है। एक आदत मुझमें थी कि मैं पिछले बारह-तेरह सालों से तम्बाखुयुक्त मंजन का प्रयोग करता था। मंजन नहीं करने पर मेरे दाँतों में खिनखिनाहट महसूस होती थी, अभी मैंने इसे भी पूरी तरह से छोड़ दिया है। पूर्व में मैंने कई बार इस मंजन को छोड़ा था लेकिन पुनः ५-७ दिनों पश्चात् प्रारम्भ कर देता था। इसी प्रकार मैंने चाय भी छोड़ दी। इससे पहले मुझे छोटी-छोटी बातों पर गुस्सा आ जाता था; सहनशीलता कम थी। लेकिन अब मुझे ऐसी कोई समस्या का अनुभव नहीं होता। समाज में पुनः रहने के लिए और जीवन का शुद्धिकरण करने के लिए भक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है।

प्रारम्भिक समय में मुझे इनका अनुसरण करने में कुछ समस्यायें आईं थी, कई लोग जप करने पर मजाक करते और कहते 'बाबाजी बनना है क्या!''

भविष्य में मेरे जीवन का लक्ष्य

भविष्य में अपने कर्तव्य को करते हुए नियमित रूप से हरे कृष्ण मंत्र का जप, कीर्तन एवं श्रीमद्भागवतम् का पठन-पाठन तथा भक्तों के सानिध्य में रहना चाहता हूँ। मैं अच्छा नागरिक बनकर समाज की निःस्वार्थ भावना से सेवा करना चाहता हूँ, और समय-समय पर भक्तों के संग में रहकर आत्मा-परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। लौकिक ज्ञान होने पर भी हम कारागार में आ गये, निश्चित् ही इसमें हमारी त्रुटियाँ रही होंगी। इनका सबसे बड़ा कारण आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव है। यदि आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव नहीं होता तो शायद आज हम कैदी जीवन के रूप में नही होते । इसलिए बन्दियों को अधिकाधिक आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता है।

* * *

(केन्द्रिय कारागार, भरतपुर के गोपाल के अनुभव)

मैंने अपने छोटे-से जीवन में दुःखों को बहुत करीब से देखा और अनुभव किया है। जब मैं दो वर्ष का था तो मेरे माता-पिता का देहान्त हो गया। गाँव में अपने साधारण-से परिवार में हम पाँच भाई थे। मेरे बड़े भाई अध्यापक थे और अपने ही विद्यालय में उन्होंने दसवीं कक्षा में मुझे दाखिला दिलवा दिया। उसी गाँव में हम दोनों कमरा रहकर रहते। कुछ समय पश्चात् वहाँ पर एक अन्य अध्यापक अपने पुत्र को लेकर आ गया, जो उसी विद्यालय में पढ़ने लगा। धीरे-धीरे उस अध्यापक ने गाँव की स्त्रियों के साथ गलत सम्बन्ध बना लिये, और वह मुझसे उन स्त्रियों को सन्देश भिजवाने का कार्य करवाने लगा। अध्यापक के शोषण के कारण एक लड़की गर्भवती हो गई। उस अध्यापक ने इसका आरोप मुझपर थोप दिया।

एक दिन लड़की के सम्बन्धियों ने मुझे बुलाकर पूछताछ की। मैंने उन्हें बताया कि यह कार्य उस अध्यापक का ही है। तब लड़की वालों ने विद्यालय में जाकर उस अध्यापक से मारपीट की। जब मैं विद्यालय पहुँचा अध्यापक ने मुझे बहुत धमकाया। अगले दिन से मेरी परीक्षायें आरम्भ हो रहीं थी। मेरे अन्दर अत्यधिक भय

बैठ गया कि रात को अवश्य ही वह मुझे मार डालेगा। रात के ढाई बजे मेरी नींद खुली और मैंने सोचा कि कल की परीक्षा के लिए कुछ पढ़ लेता हूँ। पढ़ते समय मुझे नींद न आये इसलिए मैंने थोड़ी चाय बनाकर स्टोव के पास रखी और पढ़ने लगा। इसी बीच वहाँ एक सफेद कुत्ता आकर चाय में मुँह मारने लगा। कुत्ते को भगाने के लिए मैं उठा और कमरे में रखी एक कुल्हाड़ी को लेकर उसके पीछे भागा। जैसे ही मैं दरवाजे से बाहर निकला कुत्ता भाग चुका था, किन्तु मुझे सामने चारपाई पर लेटे अपने वे अध्यापक दिखाई दिये। मैं अपने होश खो बैठा और उसके सिर पर कुल्हाड़ी से वार कर दिया।

कारागार का अनुभव

कारागार एक ऐसा स्थान है जहाँ व्यक्ति अपने किये हुए कर्मों का पश्चाताप करता है। लेकिन वह पश्चाताप हाथी के स्नान के समान है।

कारागार में प्राप्त मेरे कुछ साक्षात्कार इस प्रकार हैं –

१) कुछ लोग कारागार को नरक भी मानते हैं, क्योंकि यहाँ पर व्यक्ति को यातनायें दी जाती हैं। जैसे ही कैदी यहाँ प्रवेश करता है उसे लंगर में खाना पकाने के लिए लगा दिया जाता है, और लंगर बैरक में उसे अलग से रखा जाता है, जहाँ उसे शारीरिक एवं मानसिक रूप से यातनायें दी जाती हैं। रिश्वत लेकर ही नम्बरदार उसे वहाँ से मुक्त करता है, अन्यथा महीनों तक वह वहाँ वहीं पर शारीरिक कष्ट भोगता है। इसलिए जेल को नरक कहते हैं। मैं भी जब दफा ३०२ करके जेल में पहली बार आया तो मुझे भी इन यातनाओं से गुजरना पड़ा।

२) यहाँ पर बाहर के नये विचार जानने को नहीं मिलते, इसलिए धीरे-धीरे सब सोच समाप्त हो जाती है। हर व्यक्ति भूत या भविष्य की ही कल्पना करता रहता है। हर नया व्यक्ति यही सोचता है कि बस जमानत लग रही है, दो-चार दिन में निकल जाऊँगा। कुछ दिनों बाद खबर आती है कि जमानत खारिज हो गई। तब उसके सारे सपनों पर पानी फिर जाता है।

३) बाहर की दुनिया में प्रत्येक के पास जमीन होती है; किसी के पास कम किसी के पास अधिक। यहाँ आने के बाद उसे क्या मिलता है? दो फुट चौड़ा और छह फुट लम्बा सोने का स्थान। बाहर कितना बड़ा जमीनदार था, यहाँ पर उसी पंक्ति में खड़ा होता है जिसमें एक रिक्शाचालक भी होता है। आदमी की प्रकृति संग्रह करने की होती है। यहाँ पर मना करने पर भी यह आदत छूटती नहीं है और एक दिन प्रशासन वाले आते हैं और सब सामान उठा ले जाते हैं, किन्तु वह फिर संग्रह करने के बारे में सोचता रहता है और इन्हीं विचारों को लेकर सुखी और दुःखी होता रहता है। इससे मेरी समझ में यह आता है कि हमें बिना कारण इन वस्तुओं के चक्कर में लगकर समय को व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। यहाँ पर जो भी हमें मिलना है वही मिलता है। यहाँ दो समय की रोटी के लिए आदमी दिन-रात मेहनत करता है, फिर भी गारन्टी नहीं कि पेटभर भोजन मिलेगा।

यहाँ किसी से कहा जाये कि भगवान् का भजन करो तो मना कर देता है, क्योंकि जीवन में कभी किया नहीं। किन्तु जब कारागार में वे भगवान् का भजन करते हैं भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और शायद सोचते होंगे कि इसे यहीं रखना अच्छा है, जिससे यह मेरा भजन करता रहे। बाहर निकलेगा तो भूल जायेगा।

संग से परिवर्तन

डीग जेल से फरार होने के पश्चात् मुझे पुनः पकड़कर भरतपुर जेल में रखा गया। प्रशासन की कड़ी निगरानी के कारण मैं अत्यन्त भयभीत था। इधर-उधर जाने पर पूरी रोक थी। किन्तु जैसे ही इस्कॉन वृन्दावन से जानकीदास प्रभु का जेल में आगमन हुआ, और जैसे ही मृदंग की ध्वनि जेल के मंदिर में गूँजने लगी, मैं लालायित हो उठा। मौका मिलते ही मैं मंदिर पहुँचा और कीर्तन व सत्संग में झूमने लगा।

आरम्भिक सत्संग केवल मंदिर तक ही सीमित थे। बैरक में आकर मैं सब भूल जाता था। किन्तु धीरे-धीरे प्रभुजी के शब्दों ने मुझपर प्रभाव दिखाया। शुरु में जप करने के लिए शर्म आती थी, कि साथी लोग क्या कहेंगे – ''पहले बुरे कर्म कर दिये, अब भक्त बन रहा है।'' यही विचार मन में घूमते रहते, किन्तु मानसिक रूप से मैं जप करता। धीरे-धीरे मेरे अन्दर साहस हुआ कि संसार तो एक सागर के समान है, लोग अच्छा-बुरा तो सोचते ही रहेंगे। मैंने जप आरम्भ करने का दृढ़ निश्चय किया। लोग एक दिन, दो दिन, चार दिन कहेंगे, और अन्ततः वह दिन आयेगा जब वे कहना छोड़ देंगे। और यही हुआ। मेरा भय जाता रहा।

बाहर मुझे केवल बीड़ी पीने की लत थी किन्तु यहाँ हर प्रकार के नशे, भाँग, गांजा, चरस, तम्बाखू आदि की लत भी लग गई थी। यहाँ इन चीजों को प्राप्त करना आसान होता है।

जप करते-करते मैंने अनुभव किया कि जबतक मैं नशा करता रहूँगा तबतक मुझमें सूक्ष्म रूप से विघ्न आते रहेंगे। भक्तों के नियमित संग और हरे कृष्ण महामन्त्र के जप से मैं सभी प्रकार से नशे से मुक्त हो गया। जब कभी भक्तों के संग में विलम्ब होता, ये विकार पुनः आक्रमण करने लगते, किन्तु संग मिलते ही पुनः ये भाग जाते।

इतना ही नहीं साधुसंग और नामजप में प्राप्त आनन्द के कारण मेरे अन्दर जो कुसंगति की

(शेष भाग पृष्ठ १९ पर)

धीरे-धीरे मेरे अन्दर साहस हुआ कि संसार तो एक सागर के समान है, लोग अच्छा-बुरा तो सोचते ही रहेंगे। मैंने जप आरम्भ करने का दृढ़ निश्चय किया।

सुख की खोज में ...

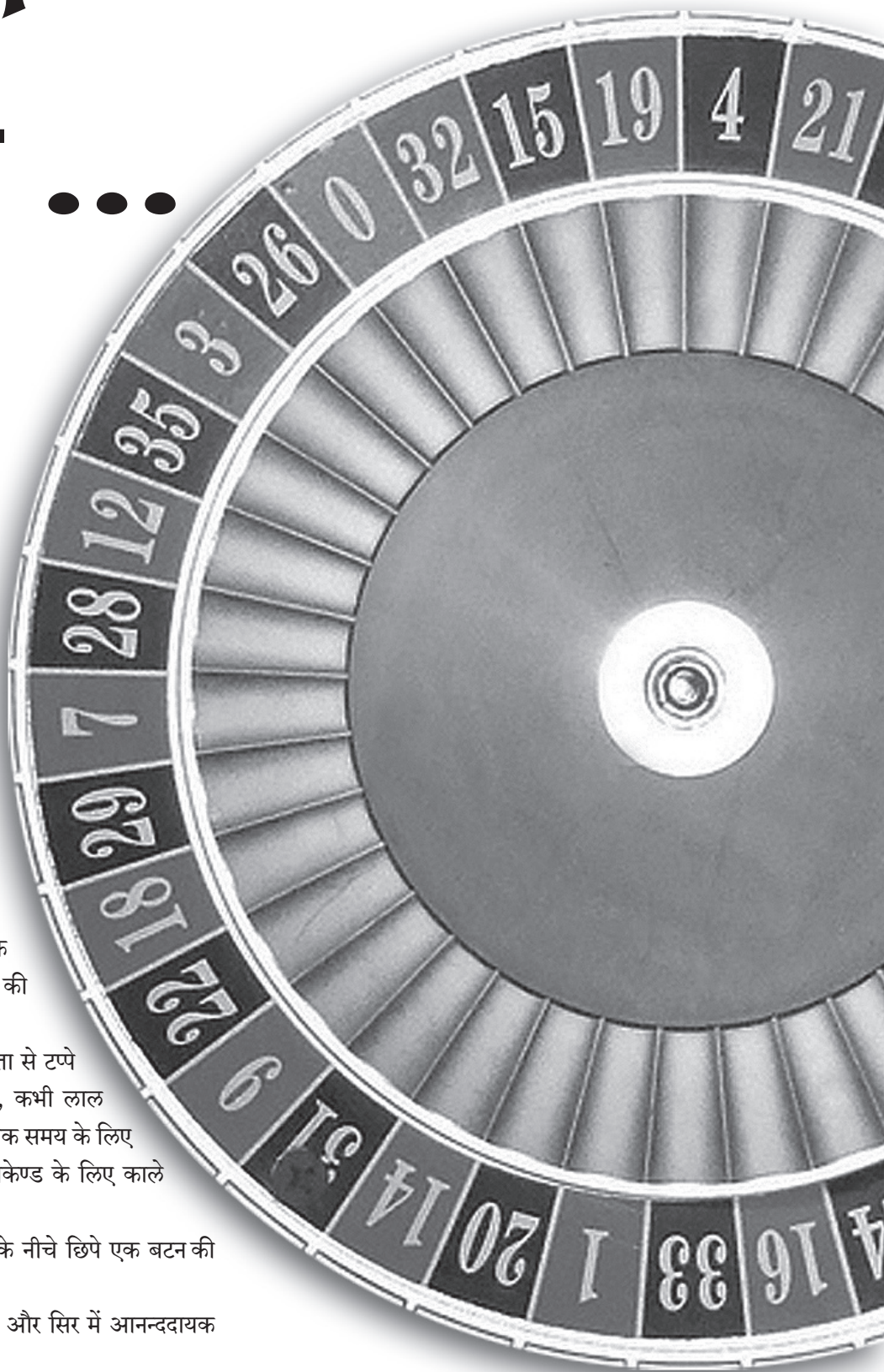

खचाखच भरा कैसिनो तनाव से भी भरा था। अरुणेश ने अपना सारा पैसा लाल पर लगा दिया था और अब चिन्तित हो अपने निचले होंठ को चबा रहा था...

–दत्त दास

दिनभर उसके भाग्य ने उसका साथ दिया, और अब उसने जीता हुआ सारा पैसा और अपने चाचा हरमेश से उधार लिया धन इस एक दाव पर लगाया था। जीतने का अर्थ था कि वह उधार की रकम चुका देगा और उसका घर बच जायेगा। हार का अर्थ उसकी बेइज्जती होगा।

घूमते हुए चक्के के चारों ओर भीड़ जमा थी। लाल और काली पट्टियों वाले चक्के के बीच तेजी से घूम रही सफेद गोली पर सभी की दृष्टि अटकी थी।

जैसे-जैसे चक्का धीरे हुआ गोली अस्थिरता से टप्पे खाने लगी, कभी काली पट्टी पर रुकती हुई, कभी लाल पर। और धीरे होने पर वह प्रत्येक रंग पर अधिक समय के लिए रुकने लगी। काला, फिर लाल, फिर एक सैकेण्ड के लिए काले पर, फिर से लाल पर।

चक्का घुमाने वाले का अदृश्य हाथ मेज के नीचे छिपे एक बटन की ओर बढ़ा। गोली लाल पर आकर थम गई।

अरुणेश ने हृदय में अविश्वसनीय रोमाञ्च और सिर में आनन्ददायक हल्केपन का अनुभव किया।

किन्तु चक्का घुमाने वाले ने चतुराई से फिर बटन दबा दिया। मेज के नीचे लगे एक छोटे-से बटन ने धीरे-से चक्के को हिला दिया और गोली ने एक और छलांग लगाई। इस बार वह काले पर आकर रुकी।

अरुणेश को मानो झटका लग गया। उसकी आँखों में आँसु आ गये। ''अरे! मैं जीत के कितना निकट आ गया था।''

इस काल्पनिक कहानी के समान इस संसार में स्थाई सुख प्राप्त करना आँख-मिचौली का खेल है, जिसमें अन्ततः पराजय ही होती है। भौतिक स्तर पर सुख की योजना में निम्नलिखित चार चीजों में से एक अवश्य होगी।

पहली यह कि हम योजना बनाते हैं, उसपर कार्य करते हैं, और लक्ष्य प्राप्त कर लेते हैं - किन्तु अन्त में हमें ज्ञात होता है कि वह लक्ष्य हमें सुखी नहीं बना पाया। हमने सोचा था कि नई कार हमें सुख देगी किन्तु उसका खर्चा गले में फाँसी का फन्दा बन जाता है। प्रसिद्ध फिल्म को देखने गये तो कैसे-न-कैसे हमने तीन घण्टे बिताये। अपनी सपनों की रानी या राजा को प्राप्त करने के पश्चात् हमें समझ आता है कि हम अकेले ही अधिक सुखी थे।

दूसरी बात यह हो सकती है कि यद्यपि हम सुखी बनाने वाले लक्ष्य प्राप्ति के लिए कठोर परिश्रम करते हैं, हम उस लक्ष्य को प्राप्त ही नहीं कर पाते। सुन्दर वातावरण में सपनों का घर खरीदने के लिए हम पर्याप्त धन नहीं जुटा पाते। मेहनत करने पर भी हम प्रसिद्ध संगीतज्ञ नहीं बन पाते, या सारी उम्र कम्पनी में काम करने पर भी वृद्धावस्था में चेयरमैन की कुर्सी हमसे एक कदम दूर रह जाती है।

तीसरी बात यह हो सकती है कि जिस वस्तु ने हमें एक समय सुख दिया था अब वह हमें और सुख नहीं दे पा रही। नई कार से पहले एक-दो सप्ताह में सुख धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। वीडियो गेम पहले मजेदार लगती है किन्तु बाद में मॉनिटर को देखने की भी इच्छा नहीं होती।

किन्तु यदि आप किसी प्रकार से पहली, दूसरी और तीसरी बात से बच गये, चौथी आपकी प्रतीक्षा कर रही है। हम थोड़ा सुख प्राप्त करते हैं, किन्तु फिर उसे खो देते हैं। हमारी सपनों की रानी ड्राइवर के साथ भाग जाती है। हमें नौकरी से लात मारकर निकाल दिया जाता है। जिस दिन हमारी कार का बीमा समाप्त होता है उससे अगले दिन वह चोरी हो जाती है।

क्या यह निराशावादी प्रतीत होता है? क्या यह कहना कि टी.वी. की दुकान पर आपको सैण्डविच नहीं मिलेगा निराशावादी है?

भौतिक जगत् उतार-चढ़ावों और बदलावों से भरा है। हमें क्षणिक सुख मिल सकता है, किन्तु वह अधिक समय नहीं टिकता। यदि चमत्कारी रूप से हमें कुछ ऐसा मिल भी जाता है जो जीवनभर हमें सुख देता है, मृत्यु के समय उसे छोड़ने के लिए हमें विवश होना पड़ता है।

क्या यह निराशावादी प्रतीत होता है? क्या यह कहना कि टी.वी. की दुकान पर आपको सैण्डविच नहीं मिलेगा निराशावादी है? आपको उस स्थान पर वह वस्तु प्राप्त हो ही नहीं सकती जो वहाँ कभी थी ही नहीं। आप कह सकते हो, ''जब तक सुख भोग कर सकते हो करो, और बाद में जब वह चला जाये तो उसे याद करके सुख लो।'' किन्तु यदि यादें इतनी सुखदायक और संतोषजनक होती तो फिर क्यों लोग सुखी बनने के लिए भौतिक कार्यों में अपनी खोज जारी रखते हैं?

सच्चा सुख केवल आध्यात्मिक स्तर पर ही पाया जाता है। स्वभाव से हम सत्, चित्, और आनन्द से पूर्ण है, अर्थात् शाश्वत ज्ञान और सुखमय। तो सुखी बनने की हमारी इच्छा स्वाभाविक है, और चूँकि हम अमर हैं हम ऐसा सुख चाहते हैं जो अमर हो; कभी न समाप्त होने वाला। इसके लिए हमें आध्यात्मिक सुख की खोज करनी होगी, जो अनन्त, असीमित और पूर्ण सन्तुष्टि देने वाला है।

आध्यात्मिक सुख आध्यात्मिक स्तर पर कार्य करने से स्वतः प्राप्त हो जाता है। हमारे शरीर एक न एक दिन कार्य करना बन्द कर देंगे। किन्तु आत्मा, जो हमारी सच्ची पहचान है, कभी नहीं मरेगी। हममें से प्रत्येक का भगवान् श्रीकृष्ण के साथ स्थाई और नित्य प्रेममय सम्बन्ध है। किन्तु अभी हम उस सम्बन्ध को भूल चुके हैं - कोई कम कोई अधिक। उसे पुनः जाग्रतकर हम सदा-सदा के लिए सुख एवं सन्तुष्टि प्राप्त कर सकते हैं।

(पृष्ठ ५ का शेष भाग)

सज्जन ने मुझसे कहा, ''मैं माँस खाना नहीं छोड़ सकता। मैं चाहता हूँ पर नहीं छोड़ पा रहा हूँ।''

अभ्यास। कुछ भी जिसका आप अभ्यास करते हैं वह आदत बन जाती है और आदत हमारा स्वभाव बन जाता है। इसलिए भक्तों के संग में तपस्या का अभ्यास करने का प्रयास कीजिए।

श्रीमद्भागवतम् (६.१.१३) में कहा गया है, *तपसा ब्रह्मचर्येण,* तपस्या का पहला सिद्धान्त ब्रह्मचर्य है। जो बच्चों की उत्पत्ति के अतिरिक्त कभी संभोग नहीं करता उसे भी ब्रह्मचारी कहा जाता है।

कृष्णभावनामृत आंदोलन बहुत महत्वपूर्ण है। यह पूरे मानव समाज - सामाजिकता, राजनीति, धार्मिकता - को नई दिशा प्रदान कर रहा है। जो कृष्णभावनामृत आंदोलन से जुड़े हैं उन्हें अत्यधिक उत्तरदायी और आत्मसंयमित होना चाहिए। परिस्थिति को समझने का प्रयास करो और श्रीकृष्ण की शरण लो। तब सबकुछ सफल हो जाएगा।

बहुत बहुत धन्यवाद।

Self-Realization
Self-Reali

योग्यता द्वारा ब्राह्मण

भगवान् श्रीकृष्ण के अनुसार कोई भी जन्म से ब्राह्मण नहीं होता, ब्राह्मण बनने हेतु योग्यता प्राप्त करना आवश्यक है।

– नृसिंह स्वामी दास
(डाक्टर एस जी एन स्वामी, पी.एच.डी)

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥
''शान्ति, आत्मसंयम, तपस्या, शुद्धता, सहनशीलता, ईमानदारी, ज्ञान, बुद्धि एवं धार्मिकता – ये ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण हैं, जिनके अनुसार वह कार्य करता है।'' (भगवद्गीता १८.४२)

जो लोग भारत के इतिहास एवं संस्कृति का अध्ययन करते हैं, वे यहाँ की वर्ण-व्यवस्था के विषय में जानते हैं। भगवद्गीता के अन्तिम अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में भेद बताते हैं। यह विभाजन लोगों को अपने स्वभाव के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। दुर्भाग्यवश इसका भारत में तथाकथित जातिवाद के रूप में गलत समझ के साथ दुष्प्रयोग किया गया है।

भगवान् श्रीकृष्ण बुद्धिजीवी वर्ग या पुजारियों को ब्राह्मण के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिनके पास वे सभी गुण होते हैं जो ऊपर बताए गए श्लोक में दिए गए हैं। जिस प्रकार न्यायधीश का पुत्र जब तक योग्य न बने न्यायधीश नहीं बन सकता, उसी प्रकार ब्राह्मण का पुत्र भी जब तक ब्राह्मण के गुण प्राप्त नहीं करेगा ब्राह्मण नहीं हो सकता। यही सिद्धान्त क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र पर भी लागू होता है किन्तु इसका पालन तथाकथित जातिवाद में नहीं होता, जहाँ केवल जन्म के आधार पर ही विभाजन कर दिया जाता है।

प्रत्येक देश में वर्णों का विभाजन स्वाभाविक रूप से होता ही है। उदाहरणतः प्रत्येक धर्म में ब्राह्मणों के समान पुजारी वर्ग होता है। समाज में उनके महत्व पर जोर देने हेतु इस लेख में हम किसी भी धर्म के पुजारी वर्ग के सदस्यों को ब्राह्मण कहकर सम्बोधित करेंगे। इस दृष्टिकोण से भगवद्गीता के निर्देश पूरे विश्व के लिए हैं यद्यपि इनका उद्गम भारत में हुआ है। लोगों को सही मार्गनिर्देशन प्रदान करने हेतु, जिससे वे पुण्यवान जीवन व्यतीत करते हुए धीरे-धीरे भगवान् की ओर मुड़ सकें, पुजारी वर्ग की आवश्यकता होती है।

पूरे विश्व के प्रत्येक समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ग के लोग होते हैं। प्रत्येक देश में लोगों के स्वभाव एवं पेशे के अनुसार सरलता से इन चार वर्गों में विभाजन किया जा सकता है। ब्राह्मण वर्ग के लोग जन्म से ही ब्राह्मण नहीं भी हो सकते। वास्तविकता में यह निश्चित् करने के लिए कि कौन सच्चा ब्राह्मण है, ब्राह्मणों के गुणों को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

वैदिक शास्त्र हमें बताते हैं कि प्रकृति के तीन गुण यथा सतो, रजो एवं तमोगुण होते हैं। ये गुण लोगों के स्वभाव सहित भौतिक शक्ति के सभी पहलूओं पर प्रभाव डालते हैं और समाज को चार वर्गों में विभाजित करने का आधार हैं। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता (४.१३) में बताते हैं, *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः*, ''प्रकृति के तीन

गुण और उनसे सम्बन्धित कार्य के अनुसार चार वर्ग मेरे द्वारा बनाए गए हैं।''

भगवद्गीता ६.१४ के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद ब्राह्मण के विषय में बताते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण सत्त्वगुण में होता है, अन्यों से अधिक बुद्धिमान होता है, भौतिक दुःखों से प्रभावित नहीं होता, ज्ञान में अधिक प्रगत होता है और इसलिए वह ऊँचे स्तर के सुख का अनुभव करता है।

''कृष्णभावानाभावित बनने की इच्छा वास्तविक इच्छामुक्ति है'' और ''भौतिक इच्छाओं से मुक्त हुआ व्यक्ति जानता है कि सबकुछ भगवान् श्रीकृष्ण की सम्पत्ति है *(ईशावास्यं इदं सर्वं)* और इसलिए वह किसी वस्तु पर भी अपना स्वामित्व नहीं दिखाता।''

एक वास्तविक ब्राह्मण सभी परिस्थितियों में शान्त रहता है क्योंकि श्रीकृष्ण की शरण स्वीकार करने के कारण उसे श्रीकृष्ण द्वारा प्राप्त होने वाली सुरक्षा का पूरा आश्वासन होता है। भगवद्गीता, अध्याय ५ (कर्मयोग – कृष्णभावना में कर्म) में श्रीकृष्ण शान्तिसूत्र देते हैं –

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

''जो मुझे समस्त यज्ञों तथा तपस्याओं का परम भोक्ता, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर एवं समस्त जीवों का उपकारी एवं हितैषी जानकर मेरी भावना में पूर्ण होता है वह सभी दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर शान्ति प्राप्त करता है।'' वह ब्राह्मण जो इस श्लोक का उद्देश्य समझता है वह स्वयं ही शान्ति प्राप्त नहीं करता अपितु सभी जगह शान्ति वितरित भी करता है। वह भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतम् और अन्य प्रामाणिक शास्त्रों से शान्ति के सार की शिक्षा सभी को देता है।

खाना, सोना एवं पारिवारिक जीवन जैसी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु की गई तपस्या से ही ब्राह्मण पहचाना जाता है।

समाज के सभी सदस्यों को एक योग्य ब्राह्मण को एक आध्यात्मिक मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार करना चाहिए। ब्राह्मण के गुण एवं निर्देश लोगों को पुण्यवान एवं भगवद्भावित जीवन की ओर अग्रसर करते हैं।

अब हम भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए ब्राह्मण के गुणों की चर्चा करेंगे।

शमः

एक सच्चा ब्राह्मण सभी परिस्थितियों में शान्त रहता है, उत्तेजित किए जाने पर भी। भगवान् मेरी सदैव रक्षा करेंगे इस पर पूरा विश्वास होने के कारण वह सदैव अभय रहता है। अपने नियत कर्म कर्तव्य करते समय वह दूसरों द्वारा अपने प्रति की गई निन्दा से विचलित या उत्तेजित नहीं होता।

भगवद्गीता (२.७१) में बताया गया है, ''जिस व्यक्ति ने इन्द्रियतृप्ति की सभी इच्छाओं को त्याग दिया है, जो सभी इच्छाओं से मुक्त जीवन व्यतीत करता है, जिसने स्वामित्व के भाव को त्याग दिया है और मिथ्या अंहकार से परे हो गया है – केवल ऐसा व्यक्ति की वास्तविक शान्ति को प्राप्त कर सकता है।'' श्रील प्रभुपाद टीका करते हैं,

आत्मसंयम (दमः)

ब्राह्मण अपने दृष्टिकोण, व्यवहार और दूसरों के साथ बातचीत में आत्मसंयम को प्रदर्शित करता है। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, *''आत्मसंयम का अर्थ है कि आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर जो भी बाधक हो, उसे स्वीकार न करना। व्यक्ति को इसका अभ्यस्त बनकर ऐसी किसी भी वस्तु को त्याग देना चाहिए, जो आध्यात्मिक उन्नति के पथ के प्रतिकूल हो।''* (भगवद्गीता १३.१२, तात्पर्य) विवाहित ब्राह्मण भी आत्मसंयम का पालन करता है और अपनी पत्नी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध में शास्त्रों द्वारा निर्धारित प्रतिबन्धों का पालन करता है।

तपस्या (तपः)

खाना, सोना एवं पारिवारिक जीवन जैसी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु की गई तपस्या से ही ब्राह्मण पहचाना जाता है। उसे स्नान करने, उपवास करने, बोलने एवं प्रातः शीघ्र उठने में तपस्या का पालन करना होता है।

भगवद्गीता (१७.१५) में वाणी की तपस्या बताई गई है, ''सच्चे, मन को भाने वाले, हितकर तथा अन्यों को क्षुब्ध न करने वाले वाक्य बोलना और वैदिक साहित्य का नियमित पारायण करना – यही वाणी की तपस्या है।'' ब्राह्मण द्वारा किए गए यज्ञ भी सदैव वैदिक शास्त्रों के निर्देश के अनुसार होने चाहिए और सदैव सत्त्वगुण में होने चाहिए।

पवित्रता (शौचम्)

जब हम भौतिक जगत् में जन्म लेते हैं, प्रकृति के तीन गुण तुरन्त ही हमें कलूषित कर देते हैं। और हमारी बद्धावस्था प्रारम्भ हो जाती है। हम मिथ्या रूप से विश्वास करने लगते हैं कि हम भौतिक प्रकृति का एक उत्पाद हैं और स्वयं को शरीर मानने लगते हैं। ब्राह्मण को शारीरिक चेतना से बाहर निकलने का अभ्यास करना होता है। शुद्ध होने का अर्थ है मिथ्या अंहकार के कल्मष को दूर करना। श्रील प्रभुपाद *भगवद्गीता यथारूप* की भूमिका में लिखते हैं, ''शुद्ध चेतना का अर्थ है, भगवान् के निर्देशों के अनुसार कार्य करना।''

सहनशीलता (क्षान्तिः)

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने श्री शिक्षाष्टक (३) में सहनशीलता को इस प्रकार परिभाषित किया है –

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ।।

''भगवान् का पवित्र नाम की कीर्तन नम्र भावना के साथ, स्वयं को मार्ग पर पड़े तृण से भी अधिक नीच समझकर, पेड़ से भी अधिक सहनशील होकर, सभी प्रकार की मिथ्या अंहकार की भावना से परे होकर और सभी को सम्मान देते हुए किया जाना चाहिए। इस प्रकार की चेतना के साथ ही भगवान् के पवित्र नामों का कीर्तन सदा किया जा सकता है।'' पेड़ को काटने पर या उसके साथ बुरा व्यवहार किए जाने पर भी वह सबकुछ शान्ति के साथ सहन करता रहता है।

शास्त्रों के अनेक निर्देशों का पालन करते हुए ब्राह्मण को निन्दा, अपमान इत्यादि को सहन करते हुए सतत रूप से सहनशील बनना होता है।

सत्यनिष्ठा (आर्जवम्)

ब्राह्मण को सत्यनिष्ठ होना चाहिए। सदैव सत्य बोलना चाहिए और अपने सत्यनिष्ठ चरित्र द्वारा तथ्यों को प्रस्तुत करना चाहिए। ब्राह्मण को मानव की धोखा देने की प्रवृत्ति से दूर रहना चाहिए।

ज्ञान (ज्ञानम्)

ब्राह्मण को आध्यात्मिक ज्ञान का भण्डार होना चाहिए, जिससे वह दूसरों को आध्यात्मिक विषयों में मार्गदर्शन प्रदान कर सके। यह ज्ञान प्रामाणिक शास्त्रों जैसे कि भगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवतम् इत्यादि से होना चाहिए। उसमें ज्ञान का सार प्रस्तुत करने के लिए शास्त्रों से उद्धृत करने की योग्यता होनी चाहिए। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं कि आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा व्यक्ति अपनी श्रद्धा में स्थिर रह सकता है किन्तु केवल किताबी ज्ञान से वह सरलता से तथाकथित विरोधाभासों द्वारा भ्रमित हो मोहित हो सकता है।

आध्यात्मिक ज्ञान ब्राह्मण की सबसे महत्वपूर्ण योग्यता है। यह केवल उसके मन से मोह की नहीं दूर करती अपितु उसे दूसरों को मोह दूर करने मे भी योग्य बनाती है। ऐसा ज्ञान जिसे विद्या कहा जाता है, उसे शान्त, शुद्ध और आत्मसंतुष्ट बनाता है। स्वयं के विषय में ज्ञान द्वारा उसे आत्म-साक्षात्कार होता है।

विज्ञान (विज्ञानम्)

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विज्ञान का अर्थ है पदार्थ और आत्मा में भेद देखने की योग्यता। ब्राह्मण दूसरों को ब्राह्मण संस्कृति एवं आत्मसाक्षात्कार हेतु मार्गदर्शन प्रदान करता है।

धार्मिकता (आस्तिक्यम्)

भगवान् श्रीकृष्ण के निर्देशों का पालन करते हुए ब्राह्मण को धार्मिक होना चाहिए।

श्रील प्रभुपाद *भगवद्गीता यथारूप* की भूमिका में लिखते हैं, ''अंग्रेजी का 'रिलीजन' शब्द सनातन-धर्म से थोड़ा भिन्न है। 'रिलीजन' से विश्वास का भाव सूचित होता है, और विश्वास परिवर्तित हो सकता है। किसी को एक विशेष विधि में विश्वास हो सकता है और वह विश्वास को बदलकर दूसरा ग्रहण कर सकता है, किन्तु सनातन धर्म उस कर्म का सूचक है जिसे बदला नहीं जा सकता।''

ब्राह्मण को वैदिक विधि-विधानों का ज्ञान होना चाहिए और वह दूसरों को धर्म के विषय में मार्गनिर्देशन प्रदान करने में योग्य होना चाहिए। धर्म के मर्म को समझे बिना केवल रीति-रिवाजों के पालन का अधिक महत्व नहीं है।

ब्राह्मणता और वैष्णवता

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि ब्राह्मणता वैष्णवता की ओर ही एक कदम है, क्योंकि ब्राह्मणता वैष्णव की योग्यता की एक सीढ़ी है और वैष्णवता ब्राह्मणता का ही फल है। वैष्णव ब्राह्मण से भी ऊँचे वर्ग में आते हैं क्योंकि वे ब्राह्मणों के गुणों से आगे निकल जाते हैं। वैष्णव अपनी भक्ति के अभ्यास एवं निर्देशों के पालन में सर्वोत्तम स्तर का पालन करते हैं।

किसी व्यक्ति द्वारा ब्राह्मण बनने की अभिलाषा हेतु भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित ब्राह्मण के गुण आज के समय में अत्यधिक कठिन प्रतीत होते हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में यह बहुधा कहा जाता है कि आज के हमारे इस पतित युग कलियुग में एक योग्य ब्राह्मण को ढूँढना अत्यधिक दुर्लभ है। किन्तु ब्राह्मण बनना एवं तत्पश्चात् वैष्णव बनना ध्यानपूर्वक अभ्यास द्वारा अवश्य ही सम्भव है।

वैष्णव ब्राह्मण से भी ऊँचे वर्ग में आते हैं क्योंकि वे ब्राह्मणों के गुणों से आगे निकल जाते हैं।

नृसिंह स्वामी दास श्रील जयपताका स्वामी महाराज के शिष्य हैं। उन्होंने इस्कॉन इण्डोनेशिया में लगभग सोलह वर्षों तक सेवा की और अब पिछले नौ वर्षों से वे इस्कॉन, बंगलौर के श्री जगन्नाथ मन्दिर में सेवा कर रहे हैं, जहाँ वे अपनी पत्नी वत्सल राधा देवी दासी के साथ रहते हैं।

(पृष्ठ ७ शेष भाग)

इस युग में सम्भव नहीं हैं किन्तु हरिनाम संकीर्तन कोई भी कर सकता है। जो कोई भी एक प्रामाणिक गुरु के मार्गदर्शन में आध्यात्मिक जीवन को स्वीकार करता है और हरे कृष्ण महामन्त्र का संकीर्तन करता है वह भगवान् का साक्षात्कार कर सकता है और जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि वह शुद्ध भक्त बनकर केवल भगवान् श्रीकृष्ण के आनन्द के लिए कार्य कर सकता है।

श्रील सत्स्वरूपदास गोस्वामी श्रील प्रभुपाद के वरिष्ठ शिष्य हैं। उन्होंने श्रील प्रभुपाद लीलामृत सहित अनेक पुस्तकों की रचना की है।

क्या वैदिक शास्त्र भेदभाव करते हैं?

दूषित स्रोतों से प्राप्त विचार एवं पूर्वधारणाओं द्वारा शास्त्रों को समझने का प्रयास हमें भ्रमित ही करेगा।

– गोविन्द दास

आपको ज्ञात ही होगा कि द्रोणाचार्य ने कौरव-पाण्डवों को तो युद्धकला में प्रशिक्षण दिया किन्तु उन्होंने निषादपुत्र एकलव्य को प्रशिक्षण देने से स्पष्ट मना कर दिया। महाभारत की यह कथा अत्यन्त विवादास्पद है। इस लेख में इस कथा की समझने योग्य पार्श्वभूमि को प्रस्तुत किया गया है।

अनेक लोग आरोप लगाते हैं कि वेद, पुराण, रामायण, महाभारत इत्यादि भारतीय धर्मशास्त्र जातिवाद पर आधारित हैं, और इसलिए उनमें किन्हीं विशिष्ट लोगों को अत्यन्त महत्व दिया गया है और किन्हीं को अत्यन्त नीच माना गया है। वास्तव में कुछ तथाकथित उच्चवर्गीय लोगों ने शास्त्रों का दुरुपयोग कर कुछ वर्गों का शोषण किया है। परिणामस्वरूप पाश्चात्य देशों में भारत नीच जाति के लोगों के साथ दुर्व्यवहार करने के लिए प्रसिद्ध है।

एक राजनेता ने भगवान् राम पर आरोप लगाते हुए एक वैष्णव संन्यासी पत्र लिखा, ''रामायण में श्रीराम ने वेदाध्ययन करने वाले एक शूद्र को क्यों मारा? क्या तुम्हारे भगवान् केवल ब्राह्मणों के लिए हैं?''

उन स्वामी ने इस प्रश्न का सटीक उत्तर दिया, ''शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान हुए बिना यह आरोप लगाना भारी गलती है। इस प्रश्न का उत्तर रामायण (उत्तर खण्ड, अध्याय ७६, श्लोक २-३) में दिया गया है –

शूद्र योन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः।
देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः ।।
न मिथ्याहं वदे राम देवलोकजिगीषया।
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नाम नामतः ।।

वास्तविकता में वेदाध्ययन करने वाले शूद्र को श्रीराम ने इसलिए मारा क्योंकि उसमें वेदाध्ययन द्वारा आगे जाकर भगवान् शंकर का वध करके माता पार्वती का भोग करने की इच्छा थी। यह शूद्र पूर्वजन्म में जन्ध नामक राक्षस था और उसने त्रेतायुग में शम्बूक नामक शूद्र के रूप में जन्म लिया था।

भगवान् राम ने कभी भी ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं किया। उन्होंने शबरी जैसी भिलनी की भक्ति को स्वीकार किया और उन्होंने नीच कुल में जन्मे निषादराज गुहा के घर में रहकर उनका भोजन स्वीकार किया। मनुष्य तो दूर उन्होंने जटायु जैसे गिद्ध की भक्ति को स्वीकार किया और राक्षस कुल में जन्म विभीषण को शरण दी। इन सभी को श्रीराम ने उच्चस्थान देकर उनका सम्मान किया।

केवल किसी के जन्म से उसकी जाति का निर्धारण करना अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है। वैदिक ग्रन्थों का यह निष्कर्ष नहीं है। जब किसी के अपराध के कारण न्यायाधीश उसे दण्ड देता है तो यह कहना, कि उसकी जाति को देखते हुए न्यायाधीश ने उसे यह दण्ड दिया है, न केवल गलत है अपितु समाज के लिए घातक भी है। इसी के साथ शास्त्रों का दुरुपयोग करके तथाकथित ब्राह्मण द्वारा समाज के निम्नवर्णीयों का शोषण करना भी गलत है। ऐसे ब्राह्मण केवल नाम के लिए ब्राह्मण हैं। श्रीमद्भागवतम् (१२.२.३) में वर्णन है *विप्रत्वे सूत्रम्,* अर्थात् केवल जनेऊ पहनने से लोग स्वयं को ब्राह्मण मानने लगेंगे।

भगवद्गीता (१८.४२) में ब्राह्मण के गुणों का वर्णन है –

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।

''शान्ति, आत्मनियंत्रण, तपस्या, स्वच्छता, सहनशीलता, प्रामाणिकता, बुद्धिमत्ता और धर्मपरायणता – इन स्वाभाविक गुणों के द्वारा एक ब्राह्मण कार्य करता है।'' ब्राह्मण किसी से द्वेष नहीं करता। यदि वह सभी के प्रति दयाभाव नहीं दिखाता तो वह केवल नाम का ब्राह्मण है।

भगवद्गीता (४.१३) में श्रीकृष्ण कहते हैं, *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः* – समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये विभाग जन्म के आधार पर नहीं अपितु व्यक्ति के गुण और कर्म के आधार पर निर्धारित होते

हैं। यदि कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय के कार्य तो करता है किन्तु यदि उसमें उनके गुण नहीं हैं तो वह केवल नाम का ब्राह्मण या क्षत्रिय है। उदाहरण के लिए यदि कोई अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण बन जाता है किन्तु उसमें शौर्य, तेज, दृढ़ता, साहस, उदारता जैसे क्षत्रिय के गुण नहीं हैं तो उसे आसुरी क्षत्रिय माना जायेगा। आजकर कितने गुण्डे या आतंकवादी अस्त्र-शस्त्र चलाते हैं, किन्तु केवल इस आधार पर हम उन्हें क्षत्रिय नहीं कह सकते। ऐसे तथाकथित क्षत्रियों का विनाश करने के लिए ही भगवान् अनेक रूपों में (परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि) अवतरित हो पृथ्वी का भार कम करते हैं।

एक गुण्डे और सिपाही दोनों के पास हथियार होते हैं और दोनों ही उनमें पारांगत होते हैं। किन्तु एक गुण्डा अविवेकता के कारण किसी के प्राण लेता है और सिपाही उस हत्यारे से नागरिकों का संरक्षण करता है। इसलिए हथियार चलाने में कुशलता प्राप्त करना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना योग्य कारण के लिए उनका उपयोग करना। मोती दिखने में आकर्षक होता है किन्तु विषैले सर्प के मस्तक पर होने के कारण वह प्राणघातक सिद्ध हो सकती है। कहने का अर्थ यह है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव, कर्म और गुणों के अनुसार कार्य नहीं करेगा तो समाज में उत्पात ही फैलेगा।

आध्यात्मिक उन्नति के लिए भगवान् का विशुद्ध भक्त बनने की आवश्यकता है, और कोई भी यह स्थिति प्राप्त कर सकता है। श्रीकृष्ण स्वयं भगवद्गीता (९.३२) में कहते हैं -

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

''हे पार्थ! जो भी मेरा आश्रय लेता है, चाहे वह स्त्री, वैश्य या शूद्र जैसी निम्न जाति का भी क्यों न हो वह परमगति प्राप्त कर सकता है।'' भगवान् को प्राप्त करने के लिए ऊँच-नीच ऐसा कोई भेद नहीं है। कोई भी भक्ति द्वारा निश्चितता से भगवान् को प्राप्त कर सकता है।

श्रीमद्भागवतम् (७.९.१०) में इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया है -

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखात् श्वपच वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः॥

''यदि एक ब्राह्मण में सभी बारह गुण हैं किन्तु यदि वह भक्त नहीं है और भगवान् के चरणों से विमुख है, तो निश्चित ही वह चाण्डाल परिवार में भी जन्मे ऐसे भक्त से नीच है जिसने अपना सर्वस्व - मन, वाणी, कार्य, धन और प्राण - भगवान् की सेवा में समर्पित किया है। ऐसा भक्त ऐसे ब्राह्मण से श्रेष्ठ है क्योंकि भक्त अपने सम्पूर्ण परिवार को शुद्ध कर सकता है, जबकि वह तथाकथित ब्राह्मण स्वयं को भी पवित्र नहीं कर सकता।''

अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य श्रील प्रभुपाद ने इसे सिद्ध करके दिखाया। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व में कृष्णभावना का प्रचार कर सभी जाति, धर्म, वर्ण और लोगों का उद्धार किया जो सर्वाधिक अधम समाज के नागरिकों के रूप में विख्यात थे, और उन सभी को उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु के पतित पावन आन्दोलन में सहभाग लेने का अवसर प्रदान किया।

(अगले अंक में ''एकलव्य पर अन्याय?'' इस विषय पर चर्चा होगी।)

गोविन्द दास इस्कॉन चौपाटी (मुम्बई) में रहते हैं और वहाँ के अध्यक्ष मण्डल के एक सदस्य हैं।

(पृष्ठ ११ का शेष भाग)

आदत थी उसमें भी परिवर्तन हो सत्संगति की ओर रुझान हो गया।

भक्तिमार्ग में आने से पूर्व मैंने गलत मार्गों का चुनाव कर रखा था। एक बदमाश बनने की चाहत थी। मैं इसी प्रकार के लोगों के संग में रहता, उनसे बदमाशी के गुर सीखता और बाहर निकलने के सपने देखता। मैंने कभी अनुभव ही नहीं किया कि सही दिखने वाला यह मार्ग पूरी तरह गलत है। जानकीदास प्रभु के संग में मुझे मालूम चला कि ये असत् और दुर्गति का मार्ग है, एवं पाप के अतिरिक्त इसमें कुछ नहीं है।

सुनवाई के लिए डीग जाते समय कई बार भागने के अवसर मिलते। किन्तु यह विचारकर कि अब तक २-३ बार भागकर क्या मेरी इच्छायें पूरी हुई हैं? मैं रुक जाता।

भक्ति का ज्ञान अपना प्रभाव दिखा रहा था।

जीवन का लक्ष्य

आज कोई मुझसे पूछे कि जेल कैसी लगती है? मैं कहूँगा माँ के समान। क्योंकि यहीं मुझे भक्तिरूपी अमूल्य रत्न मिला, जो एक माँ ही अपने बच्चे को दे सकती है।

जब से हम भक्ति से जुड़े हैं जेल एक आश्रम लगता है। प्रातः सभी उद्योगशाला चले जाते हैं, जहाँ एक ओर रामायणजी की चौपाइयों और दूसरी ओर गीताजी के श्लोकों का गुणगान सुनाई देता रहता है। यह कार्यक्रम प्रातः ७ से १०:३० तक चलता है और जैसे ही कार्यक्रम समाप्त होता है, भगवान् के प्रसाद की प्रतीक्षा में सभी पंक्ति में लग जाते हैं।

अकसर जेल से रिहा होते समय कोतवाल पूछते हैं कि बाहर निकलकर क्या करोगे?

अब तो मैं यही कहूँगा कि भगवान् श्रीकृष्ण और उनके भक्तों की सेवा में ही मेरे जीवन की सार्थकता होगी। जानकीदास प्रभु की कृपा से जप, सत्संग, कीर्तन और आध्यात्मिक शास्त्रों में रुचि उत्पन्न हुई है। उनसे हमें पता चला कि मनुष्य जीवन का एकमात्र उद्देश्य भगवान् की सेवा करना है।

सेवा तो मैं पहले भी करता था, किन्तु अब मुझे ज्ञात हुआ है कि वह सेवा इस संसार के नाशवान पदार्थों या लोगों की थी। उनसे मुझे क्या मिला? निराशा, दुःख, एवं जन्म-मरण का बन्धन। किन्तु भगवान् की सेवा से मुझे सच्चा सुख और जन्म-मरण से मुक्ति की आशा मिली है, यद्यपि अभी मैं सलाखों में बँधा हुआ हूँ।

भगवान् को देखने के लिए नेत्र

शुद्ध भक्ति द्वारा श्रीकृष्ण के भक्त
उन्हें प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

– मोहिनी राधादेवी दासी

जब मैं आठ वर्ष की थी मुझे शिक्षक द्वारा ब्लैकबोर्ड पर लिखे शब्दों को देखने के लिए आँखों पर जोर देना पड़ता था। मेरी माँ मुझे एक नेत्र-विशेषज्ञ के पास लाई जिसने चश्मा पहनने के लिए कहा। चश्मे में लैंस प्रकाश को मोड़कर आँखों में आई कमी को ठीक करते हैं। वैज्ञानिक अत्यधिक शक्तिशाली लैंसों के प्रयोग द्वारा अपनी दृष्टि को 'सही' करते हैं, जिससे वे अत्यन्त निकट अथवा दूर की वस्तुओं को देख पाते हैं।

कोई भी लैंस तकनीक हमें परम भगवान् श्रीकृष्ण को नहीं दिखा सकती। वे हमारी भौतिक इन्द्रियों से परे हैं। चूँकि वे त्रिगुणातीत (सतो, रजो और तमोगुण से परे) हैं, इन गुणों में फँसी कोई भी आत्मा श्रीकृष्ण को नहीं देख सकती, और उसे आध्यात्मिक दृष्टि से नेत्रहीन माना जा सकता है। चूँकि दृष्टि में यह त्रुटि आध्यात्मिक स्तर पर है इसका समाधान भी आध्यात्मिक है। हम सही मार्गनिर्देशन में भक्ति करके ही श्रीकृष्ण को देखने के योग्य हो सकते हैं। जैसा कि श्रील प्रभुपाद कहते, ''हाँ, तुम भगवान् को देख सकते हो। किन्तु पहले तुम्हारे पास नेत्र होने चाहिए।''

आध्यात्मिक नेत्रहीनता

कई बार लोग कहते हैं कि देखकर ही विश्वास करना चाहिए। और चूँकि वे भगवान् को नहीं देख सकते वे उनपर विश्वास नहीं करते। श्रील प्रभुपाद नास्तिक लोगों को ''आध्यात्मिक अन्धे, जो अज्ञानता के मोतियाबिन्द से ग्रस्त हैं'' कहते। अज्ञानता वह मोतियाबिन्द है जो आँखों को ढककर सच्चाई देखने में बाधा डालती है।

भगवद्गीता में आध्यात्मिक नेत्रहीनता धृतराष्ट्र (जो शारीरिक रूप से भी नेत्रहीन था) और उसके पुत्रों को भगवान् के शुद्ध भक्त पाण्डवों के साथ सुलह करने से रोकती है। चूँकि धृतराष्ट्र राजा था उसकी नेत्रहीनता ने पूरे समाज को प्रभावित किया और अन्ततः कुरुक्षेत्र युद्ध हुआ। उसकी नेत्रहीनता ने उसके अनुयायियों को भी प्रभावित किया। जैसाकि श्रील प्रभुपाद अकसर उद्धृत करते, ''जब एक अन्धा दूसरे अन्धे का अनुसरण करता है, दोनों गड्ढे में गिरते हैं।''

धृतराष्ट्र की नेत्रहीनता की अपेक्षा भी उसके पास अपने सारथी संजय की सहायता से कुरुक्षेत्र की रणभूमि में हो रही घटनाओं को ''देखने'' का अवसर था। व्यासदेव ने संजय को दिव्यदृष्टि दी जिससे वे श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच हुए

चित्र - दर्पण देवी दासी

संवाद भगवद्गीता सहित सम्पूर्ण युद्ध का आँखोंदेखा हाल धृतराष्ट्र को सुना पाये। दुर्भाग्यवश धृतराष्ट्र की आध्यात्मिक नेत्रहीनता और अपने दुष्ट पुत्र के प्रति आसक्ति श्रीकृष्ण की शिक्षाओं को समझने में बाधा बन गई।

धृतराष्ट्र के ही समान भौतिक संसार में जकड़ी जीवात्मायें आध्यात्मिक रूप से नेत्रहीन हैं और केवल प्रामाणिक गुरु की शरण लेने से ही रोगमुक्त हो सकती हैं। श्रीकृष्ण भगवद्गीता (४.३४) में बताते हैं, ''तुम गुरु के पास जाकर सत्य को जानने का प्रयास करो। उनसे विनीत होकर जिज्ञासा करो और उनकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकते हैं, क्योंकि उन्होंने सत्य का दर्शन किया है।'' अन्धा व्यक्ति किसी अन्य अन्धे की सहायता नहीं कर सकता, किन्तु जिसके पास दिव्य ज्ञान है वह उस 'दृष्टि' को अन्यों को दे सकता है। स्वयं भगवान् ने इस विधि की पुष्टि की है और गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से हमें प्रदान की है।

जिस प्रकार एक छात्र चिकित्सा-विज्ञान समझने के लिए दक्ष चिकित्सक के पास जाता है, एक जिज्ञासु व्यक्ति को आध्यात्मिक विज्ञान समझने के लिए आध्यात्मिक गुरु के पास जाना चाहिए। श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि के रूप में गुरु सच्चे ज्ञान की दृष्टि प्रदानकर बद्ध जीवात्मा की नेत्रहीनता को दूर करते हैं। इसलिए हम प्रार्थना करते है - *ॐ अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः* - ''मैं घोर अज्ञानता के अन्धकार में उत्पन्न हुआ था, और मेरे गुरु ने अपने ज्ञान रूपी प्रकाश से मेरी आँखें खोल दीं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।'' आध्यात्मिक ज्ञान अथवा दृष्टि प्रदानकर गुरु भौतिक आसक्ति के अन्धेपन को दूर करते हैं।

''अज्ञानता का अन्धकार'' वह अज्ञानता है जिसमें हम अपने आत्मा के अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर शरीर के साथ अपनी मिथ्या पहचान करते हैं। कृष्णभावना में शुद्ध भक्त के रूप में स्थापित हो हम अनुभव करते हैं कि यह शरीर अस्थाई है और यह जानकर हम शारीरिक स्तर पर जीवों में भेदभाव करना बन्द कर देते हैं। सभी जीवों को श्रीकृष्ण का अंश जानकर एक विद्वान् ''ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को समान दृष्टि से देखता है।'' (भ.गी. ५.१८) श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यह आध्यात्मिक दृष्टि - सभी को शरीर से परे देखना - ''शाश्वत दृष्टि'' कहलाती है

(भ.गी. १३.३२)।

जब श्रीकृष्ण पृथ्वी पर उपस्थित थे उन्होंने अनेक जीवों पर अपनी कृपा की, किन्तु सभी उन्हें समान रूप से नहीं देख पाये। श्रीकृष्ण बताते हैं, ''जो जिस भाव से मेरे पास आता है, मैं उसी प्रकार उसके साथ व्यवहार करता हूँ।'' (भ.गी. ४.११) तो कुछ उन्हें परम भगवान् के रूप में देख पाये, जबकि अन्य उन्हें साधारण व्यक्ति के रूप में – एक ग्वाला, पाण्डवों के दूत या अर्जुन के साधारण–से सारथी। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में उन्होंने अपना विश्वरूप दिखाया किन्तु वह दृष्टि केवल अर्जुन को ही दी गई थी, जो उनके प्रिय भक्त एवं मित्र थे। श्रील प्रभुपाद वर्णन करते हैं कि भगवान् के प्रति भक्ति होने के कारण अर्जुन के पास ''दिव्यदृष्टि'' थी। (भ.गी.११.५४)

श्रीकृष्ण का रूप शाश्वत ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण है, सच्चिदानन्द। शुद्ध भक्त उन्हें यथार्थ रूप में देखते हैं और अपने प्राकृतिक स्वभाव के अनुसार उनके साथ विभिन्न भावों में व्यवहार करते हैं। अज्ञानता से अन्धे हुए दूषित भौतिकवादी और आसुरी लोग श्रीकृष्ण की सर्वोच्चता को नहीं देख पाते। श्रीकृष्ण (भगवद्गीता ९.११) में कहते हैं – ''जब मैं मानव शरीर में अवतरित होता हूँ मूर्ख लोग मेरा तिरस्कार करते हैं। वे मेरे दिव्य स्वभाव और प्रत्येक वस्तु पर आधिपत्य को नहीं जान पाते।'' श्रीकृष्ण बताते हैं कि जो उनके मूल रूप को देख पाये उन सभी ने उनके धाम में प्रवेश किया, किन्तु जो ''भगवान् को नहीं देख पाये वे भौतिक इच्छाओं से आसक्त यहीं (जन्म–मृत्यु के चक्र में) रह गये'' (श्रीमद्भागवतम् ३.२.११, तात्पर्य)

दूसरी ओर श्रीकृष्ण का दर्शन इतना शुद्धिकारक है कि उनके द्वारा मारे गये असुर भी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। श्रीकृष्ण के अपने धाम लौट जाने के पश्चात् उद्धव ने विदुर से कहा कि कुरुक्षेत्र की रणभूमि में जिसने भी श्रीकृष्ण का दर्शन किया, चाहे वह किसी भी सेना का था, मृत्यु के पश्चात् उसने वैकुण्ठ में प्रवेश किया। (श्रीमद्भागवतम् ३.२.२०) बृहद्भागवतामृत (२.१.१६४) बताती है कि भगवान् के दर्शन से व्यक्ति का जीवन सफल हो जाता है।

सर्वाधिक मूल्यवान रत्न की प्राप्ति

अन्ततः श्रीकृष्ण को देखना उन्हीं की कृपा द्वारा सम्भव है, और उनकी कृपा भक्ति द्वारा उन्हें प्रसन्न कर प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवतम् के चौथे स्कन्द में पाँच वर्षीय ध्रुव को प्राप्त हुये श्रीकृष्ण के दर्शन का वर्णन आता है। यह कथा दर्शाती है कि किस प्रकार भक्ति साधक का शुद्धिकरण करती है और उनकी भौतिक इच्छाओं को दिव्य अनुभवों में परिवर्तित कर देती है।

ध्रुव के पिता विश्व सम्राट् महाराज उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं, सुरुचि और सुनीति। एक समय जब छोटे–से ध्रुव ने अपने पिता की गोद में बैठने का प्रयास किया तो ध्रुव की सौतेली माँ सुरुचि ने, जो राजा की प्रिय पत्नी थी, ध्रुव को डाँटते हुए कहा कि वह अपने पिता की गोद या राजसिंहासन पर बैठने योग्य नहीं है क्योंकि ध्रुव ने उसके गर्भ से जन्म नहीं लिया। उसने कहा कि वह ''उस इच्छा को पूरा करने का प्रयास कर रहा है जो असम्भव है।'' चूँकि वह राजा की प्रिय पत्नी थी, उसे इसका घमण्ड था और अन्यों को कष्ट देने में वह तनिक भी नहीं हिचकिचाती।

ध्रुव की माँ सुनीति ने अपने पुत्र को सान्त्वना दी और सलाह दी कि वह अपनी इच्छापूर्ति के लिए परम भगवान् के चरणकमलों की पूजा करे। व्यंगात्मक रूप से सुरुचि ने भी ध्रुव को ऐसी ही सलाह दी थी। इसलिए भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए ध्रुव ने जंगल में जाकर अनेक तपस्यायें कीं।

मार्ग में उन्हें देवर्षि नारद मिले, जो उनके गुरु बन गये। ध्रुव ने पूछा कि वे कैसे अपने अपने पिता और अपने प्रपितामह ब्रह्माजी से भी विशाल राज्य प्राप्त कर सकते हैं (अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से भी श्रेष्ठ)। असम्भव प्रतीत होती इस माँग को पूरा करने के लिए नारदमुनि ने ध्रुव को परामर्श दिया कि वे तीव्रता से भगवान् की भक्ति करें, और वह भी किसी पवित्र स्थान पर। उन्होंने ध्रुव को मधुवन भेजा, जो यमुना नदी के तट पर वृन्दावन के बारह वनों में से एक है। तब नारदमुनि ने भगवान् के शरीर के सुन्दर अंगों का वर्णन किया और ध्रुव से कहा कि वह अपने हृदय में विराजित भगवान् पर ध्यान करे; ऐसी पद्धति जो उसकी चेतना को शुद्ध कर देगी। उन्होंने ध्रुव को एक मन्त्र भी दिया और कहा कि वह वहीं उपलब्ध फल, फूल और तुलसी पत्तों से भगवान् के विग्रह की सरल पूजा करे।

ध्रुव ने ध्यानपूर्वक नारदमुनि के निर्देशों का पालन किया और कुछ ही समय में अपनी भक्ति से ''पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को बाँध लिया।'' यद्यपि ध्रुव मात्र के बालक थे, उन्होंने इतनी भयंकर तपस्यायें की कि उसके कारण ब्रह्माण्ड का सन्तुलन बिगड़ने का भय उत्पन्न हो गया और त्रस्त होकर सभी देवतागण समाधान के लिए भगवान् के पास आये। भगवान् ने उन्हें शान्त किया और ध्रुव की तपस्यायें रोकने का आश्वासन दिया।

इसी बीच ध्रुव ने हृदय में स्थित भगवान् पर ध्यान जारी रखा। किन्तु अचानक वह रूप अन्तर्धान हो गया और ध्रुव की समाधि भंग हो गई। उन्होंने अपने नेत्र खोले और देखा की साक्षात् भगवान् उनके समक्ष खड़े थे।

श्रीमद्भागवतम् (४.९.३) उस दर्शन की तीव्रता का वर्णन करती है – ''भावविभोर हो ध्रुव महाराज ने इस प्रकार भगवान् को देखा मानो वे अपने नेत्रों से भगवान् को पी रहे थे, अपने मुख से भगवान् के चरणों का चुम्बन कर रहे थे, और अपनी भुजाओं से उनका आलिंगन कर रहे थे।'' वे भगवान् को प्रार्थनायें अर्पित करना चाहते थे, किन्तु वे अनुभवहीन थे। इसलिए भगवान् ने ध्रुव के मस्तक पर अपना शंख स्पर्श कर उसे शक्ति प्रदान की। इस प्रकार ध्रुव को समस्त वैदिक ज्ञान का सार प्राप्त हुआ और वे भगवान् का यथोचित गुणगान कर पाये।

ध्रुव महाराज के लिए भगवान् का दर्शन किसी मूल्यवान और दुर्लभ रत्न को देखने के समान था। जिन भौतिक इच्छाओं से प्रेरित हो उन्होंने भीषण तपस्या आरम्भ की थी, शुद्ध

भक्ति के समक्ष वे इच्छायें तुच्छ रह गईं। अब अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य समझते हुए उन्हें ग्लानि होने लगी कि उन्होंने राज्य और प्रतिष्ठा जैसी व्यर्थ वस्तुओं के लिए प्रार्थना की थी। अपनी पुस्तक 'श्रीकृष्ण की ओर' में श्रील प्रभुपाद हरिभक्तिसुधोदय (७.२८) से एक श्लोक उद्धृत करते हैं जिसमें ध्रुव महाराज भगवान् से कहते हैं – ''मैं केवल अपने पिता के राज्य और सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए, इतनी भयंकर तपस्या कर रहा था, किन्तु अब मुझे आपके दर्शन मिल गये हैं। यहाँ तककि महान् ऋषि-मुनि आपको नहीं देख सकते। मुझमें ऐसी क्या योग्यता थी? मैंने केवल काँच के कुछ टूटे हुए टुकड़ों के लिए घर छोड़ा, किन्तु उसके बदले मुझे अत्यन्त मूल्यवान रत्न मिल गया। अब मैं पूर्णतः सन्तुष्ट हूँ। मैं आपसे अब अन्य कोई अपेक्षा नहीं रखता।'' भगवान् के दर्शन उस मूल्यवान रत्न के समान है जिसके सामने वे भौतिक इच्छायें 'कूड़े और काँच' के समान हैं जिन्हें सभी बद्धजीव जीवन का अंतिम लक्ष्य मानते हैं। सच्चे मूल्यों के स्थान पर मिथ्या क्षणभंगुरता के पीछे भागना भौतिकवाद के अन्धेपन को दर्शाता है।

ध्रुव महाराज की भक्ति ने उनकी आध्यात्मिक नेत्रहीनता का उपचार कर दिया, और भगवान् ने उनके समक्ष प्रकट होकर उन्हें आशीर्वाद दिया। यद्यपि ध्रुव भौतिक इच्छायें लेकर आये थे, गुरु के निर्देशन में भक्ति ने उन्हें शुद्ध कर दिया और भगवान् को देखने के योग्य बना दिया। शुद्ध भक्ति के कारण भगवान् के दर्शन मात्र से ध्रुव पूर्णतः सन्तुष्ट हो गये।

भगवान् के दर्शन

भगवान् के शुद्ध भक्तों के पास दिव्यदृष्टि होती है जिससे वे सदैव श्रीकृष्ण को देख पाते हैं। श्रीब्रह्मसंहिता (५.२८) के अनुसार – ''जो भगवान् श्यामसुन्दर के प्रेम में भावविभोर रहते हैं, वे अपने हृदय में उस प्रेम और भक्ति के कारण सदैव भगवान् का दर्शन करते हैं।''

इस प्रकार की दृष्टि के लिए भक्ति शुद्ध होनी चाहिए, जो दुर्लभ है। किन्तु एक नवसाधक भी विभिन्न प्रकार से श्रीकृष्ण के रूप की सराहना कर सकता है। चूँकि श्रीकृष्ण हमारी भौतिक इन्द्रियों से परे हैं, उन्हें वर्तमान नेत्रों से नहीं देख जा सकता। किन्तु अपने भक्तों की भक्ति को आगे बढ़ाने के लिए वे मंदिर में अपने विग्रह रूप में प्रकट होते हैं। यद्यपि भौतिक इन्द्रियों से वह रूप पत्थर, धातु, लकड़ी अथवा रंग से बना प्रतीत होता है, अर्चामूर्ति वास्तव में भगवान् का ही रूप है। अर्चामूर्ति न तो कोई पुतला या बुत है और न ही कोई चिह्नात्मक वस्तु, अपितु वे स्वयं भगवान् हैं जो ऐसे रूप में हमारे समक्ष आते हैं जिससे कोई भी उन्हें देख सके। कृपावश वे इस रूप में प्रकट होते हैं और अपने भक्तों के समक्ष उनके समर्पण के स्तर के अनुसार स्वयं को प्रकाशित करते हैं। श्रील प्रभुपाद श्रीमद्भागवतम् (३.१.१७, तात्पर्य) में लिखते हैं कि हमारे अन्दर भगवान् को देखने की क्षमता का स्तर दर्शाता है कि ''किस स्तर तक हमारा जीवन पापों से मुक्त हैं।'' दूसरे शब्दों में, हमारे भगवान् को देखने की क्षमता का स्तर ही कृष्णभक्ति में हमारे स्तर को दर्शाता है।

इसलिए भक्त भगवान् जगन्नाथ से आध्यात्मिक दृष्टि के लिए प्रार्थना करते हैं जिससे वे उनके सच्चे रूप को देख सकें – *जगन्नाथ स्वामी नयनपथगामि भवतु मे* – ''हे सम्पूर्ण जगत् के नाथ! कृपया स्वयं को मेरे समक्ष प्रकट करें।'' यह सुनने में अटपटा लगेगा कि जगन्नाथ के समक्ष खड़ा भक्त उनके दर्शन की प्रार्थना कर रहा है, किन्तु यह प्रार्थना भगवान् को यथार्थ में देखने के लिए आवश्यक आध्यात्मिक दृष्टि के लिए है।

चूँकि विग्रह और श्रीकृष्ण एक ही हैं, विग्रह रूप में प्रकट होने का उनका वही लक्ष्य है जो अपने मूल रूप में प्रकट होने का। प्रत्येक युग में श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं ''भक्तों की रक्षा और दुर्जनों के नाश के लिए'' (भगवद्गीता ४.८)। इसका अर्थ है कि वे असुरों का वध करने और भक्तों को आनन्द देने के लिए आते हैं। इसी प्रकार श्रीचैतन्य चरितामृत (मध्य २०.२१९) में कहा गया है,

सर्वत्र प्रकाश ताँर -- भक्ते सुख दिते।
जगतेर अधर्म नासि' धर्म स्थापिते।।

''भगवान् केवल अपने भक्तों को आनन्द देने के लिए समस्त ब्रह्माण्डों में विभिन्न रूपों में विद्यामन हैं। इस प्रकार भगवान् अधर्म का नाश कर धर्म की स्थापना करते हैं।''

हमारी इन्द्रियाँ अपूर्ण और भौतिक रूप से दूषित हो सकती हैं, किन्तु भगवान् की भक्ति द्वारा वे शुद्ध हो जायेंगी, जैसाकि ध्रुव महाराज के उदाहरण से देखने को मिलता है। भक्ति का अर्थ से अपनी समस्त इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगा और धीरे-धीरे उन्हें शुद्ध करना। श्रील प्रभुपाद संस्तुति करते हैं कि आँखों को ''अन्य कोई वस्तु नहीं केवल भगवान् के सुन्दर रूप को देखने की अनुमति देनी चाहिए।'' (भगवद्गीता १३.८-१२, तात्पर्य)। श्रीकृष्ण का एक नाम गोविन्द भी है; वे जो गायों और इन्द्रियों का आनन्द दें। हमारी आध्यात्मिक दृढ़ता और भक्ति के प्रत्युत्तर में वे हमें उन्हें आमने-सामने देखने की योग्यता प्रदान करेंगे। और वह दृष्टि किसी भी प्रकार के चश्मों, लैंसों, दूरबीनों अथवा दूरदर्शी यन्त्रों से प्राप्त करनी सम्भव नहीं है।

यद्यपि ध्रुव भौतिक इच्छायें लेकर आये थे, गुरु के निर्देशन में भक्ति ने उन्हें शुद्ध कर दिया और भगवान् को देखने के योग्य बना दिया।

मोहिनी राधा देवी दासी प.पू.गोपालकृष्ण गोस्वामी की शिष्या हैं। उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में स्नातक डिग्री प्राप्त की है। अभी वे अपने पति नारदऋषि दास के साथ मुम्बई में रहती हैं और भक्तिवेदान्त मिशन स्कूल में शिक्षिका हैं।

रात के सपने, दिन के सपने

यह वार्तालाप जनवरी १९७४ में लॉस ऐंजिलिस में श्रील प्रभुपाद एवं विश्वविद्यालय के एक छात्र के मध्य हुआ।

छात्र – आपने अपनी पुस्तकों में कहा है कि यह जगत् सपने के समान है।

श्रील प्रभुपाद – हाँ, यह स्वप्न है।

छात्र – यह स्वप्न कैसे हुआ?

श्रील प्रभुपाद – उदाहरणार्थ, गत रात्रि तुम्हें कोई सपना आया, किन्तु अब उसका कोई महत्व नहीं है। वह समाप्त हो गया है और आप पुनः जब आज रात सोओगे तो उन सारी बातों को भूलकर दूसरा सपना देखोगे। जब आज रात में यह सपना देखोगे कि ''मेरा घर है, मेरी पत्नी है,'' तो कल आप इसे स्मरण नहीं रखोगे। आप सबकुछ भूल जाओगे, अतः यह सब सपना है।

छात्र – क्या यह वास्तविकता है या नहीं?

श्रील प्रभुपाद – यह कैसे वास्तविक हो सकता है? रात में आप भूल जाते हो। जब आप सोते हो तो क्या आपको याद रहता है कि आपकी पत्नी है और आप शय्या पर सो रहे हो? यदि आप लगभग तीन हजार मील दूर चले जाओ और अपने सपने में सर्वथा भिन्न वस्तु देखो तो क्या उस समय आपको जब याद रहता है कि आपका एक घर है?

छात्र – नहीं।

श्रील प्रभुपाद – अतः यह स्वप्न है। आज रात जो आप देखेंगे वह मात्र स्वप्न बन जाएगा जिस तरह कल रात आपने देखा था – अब आप जानते हो कि यह केवल स्वप्न था। अतः दोनों स्वप्न हैं; आप तो मात्र एक परदेसी हो। बस! आप यह या वह स्वप्न देख रहे हो। आत्मा वास्तविक है। किन्तु यह भौतिक शरीर और इसके आस-पास की वस्तुएँ जिन्हें आप देख रहे हैं वह स्वप्न है।

छात्र – किन्तु मुझे लगता है कि यह अनुभव वास्तविक है और स्वप्न वास्तविक नहीं है। दोनों में क्या अन्तर है....

श्रील प्रभुपाद – नहीं। यह सारा अनुभव असत्य है। यह सच कैसे हो सकता है? यदि यह सच होता तो रात में आप इसे कैसे भूल जाते? यदि यह सच होता तो आप इसे कैसे भूल सकते थे? क्या रात में आप यह सब स्मरण रखते हो?

छात्र – मुझे स्मरण नहीं रहता।

श्रील प्रभुपाद – तो यह सच कैसे हो सकता है? जिस प्रकार आप गत रात देखे सपने को स्मरण नहीं रख सकते, अतः उसे ''स्वप्न'' कहते हो उसी प्रकार यह अनुभव भी एक सपना है, क्योंकि आप रात में इसे भूल जाते हो....

छात्र – किन्तु मुझे ऐसा लगता..

श्रील प्रभुपाद – यह दिन का स्वप्न है और वह रात्रि

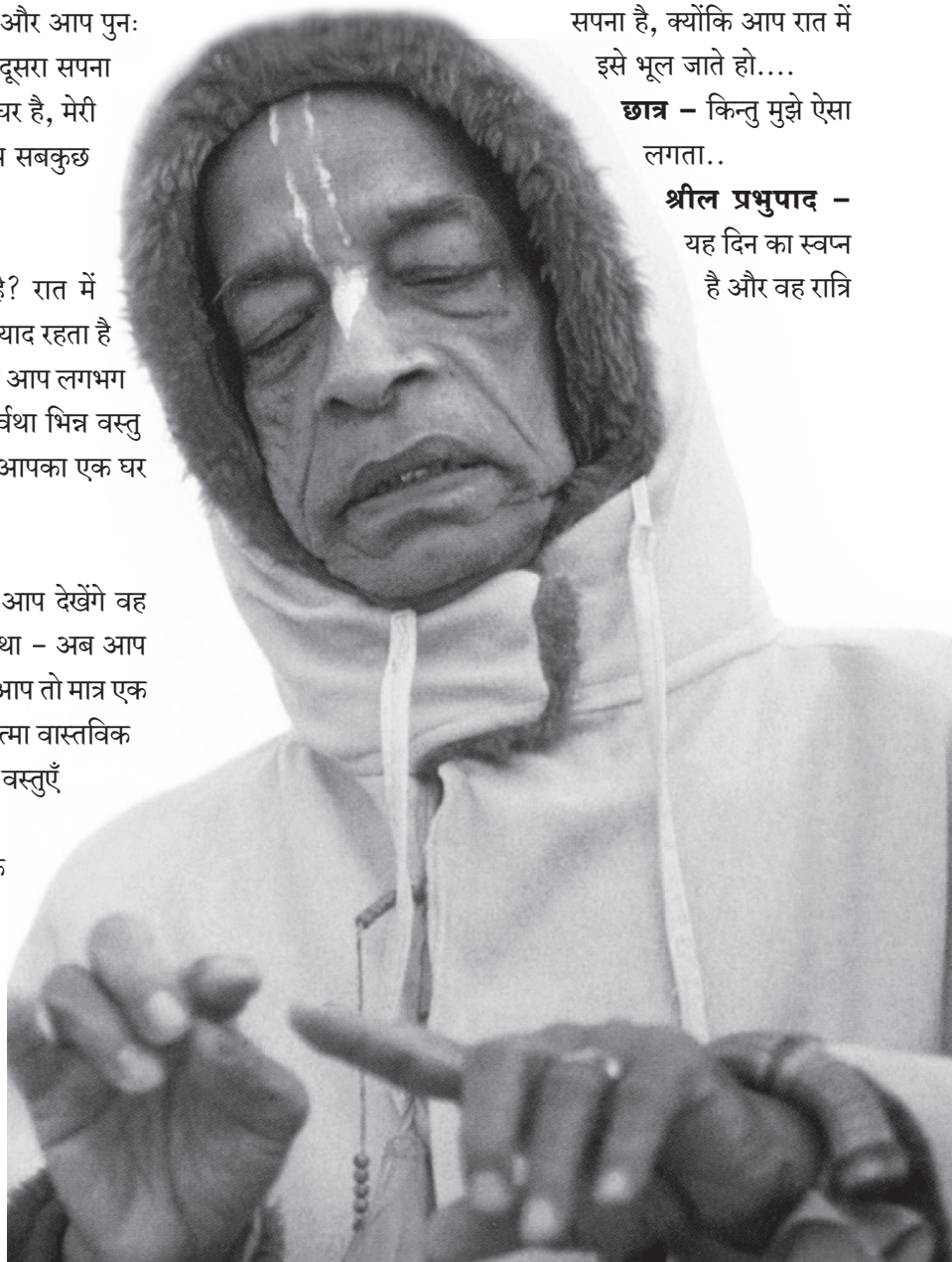

का। बस। जब आप रात में सपना देखते हो तो अनुभव करते हो कि वह वास्तविक है। हाँ। आप सोचते हैं कि वह असली है। वह स्वप्न है किन्तु फिर भी आप चिल्लाते हो, ''शेर, शेर, शेर''। वह शेर कहाँ है? किन्तु आप वहाँ उस शेर को एक वास्तविकता के रूप में देख रहे हो। ''मुझे शेर मार रहा है।'' किन्तु वहाँ व्याघ्र है ही कहाँ। अथवा आप यह सपना देखते हो कि आप किसी सुन्दर लड़की को गले लगा रहे हो। वह सुन्दर लड़की कहाँ है? किन्तु वास्तव में ऐसा हो रहा है।

छात्र – क्या ऐसा हो रहा होता है?

श्रील प्रभुपाद – एक अर्थ में ऐसा हो रहा होता है, क्योंकि वीर्य स्खलित होता है। स्वप्नदोष। किन्तु वह लड़की है कहाँ? क्या यह स्वप्न नहीं है? और उसी प्रकार इस तथाकथित वास्तविक जीवन का अनुभव भी एक स्वप्न है। तुम्हें यह वास्तविक लगता है किन्तु यह है स्वप्न ही। इसलिए यह माया-सुखाय, अर्थात् मायामय सुख कहलाता है। तुम्हारा रात्रि का और दिन का सुख एक ही है। रात में तुम्हें स्वप्न आता है कि तुम एक सुन्दर लड़की का आलिंगन कर रहे हो, किन्तु ऐसी कोई वस्तु है नहीं। उसी प्रकार दिन के समय भी आप जो ''प्रगति'' कर रहे हो – वह भी ऐसी ही है। माया-सुखाय, आप स्वप्न देखते हो कि ''इस विधि से मैं सुखी बनूँगा या उस विधि से सुखी बनूँगा'' किन्तु पूरी विधि ही स्वप्न मात्र है। तुम इस दिन के स्वप्न को सच्चाई मान रहे हो क्योंकि इसकी अवधि दीर्घ है। रात में जब तुम स्वप्न देखते हो तो अवधि केवल आधे घण्टे की रहती है। किन्तु यह दिन का स्वप्न बारह घण्टे या इससे भी अधिक चलता है। यही अन्तर है। यह बारह घण्टे का स्वप्न है और वह आधे घण्टे का – किन्तु वास्तव में दोनो ही स्वप्न हैं। क्योंकि एक बारह घण्टे का स्वप्न है, अतः आप उसे वास्तविक मान लेते हो। इसे माया कहते हैं।

छात्र – माया!

श्रील प्रभुपाद – हाँ। आप पशु एवं अपने बीच में अन्तर करते हो, किन्तु यह भूल जाते हो कि जिस प्रकार पशु मरेगा उसी प्रकार आप भी मरेंगे। इसलिए कहाँ है आपकी प्रगति? क्या आप सदियों तक यहाँ रहेंगे? आप भी एक दिन मरेंगे। पशुओं की तुलना में आप प्रगतिशील कैसे हुए? इसका वर्णन वैदिक-ग्रन्थों में हुआ है। *आहारनिद्राभयमैथुनम् च समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्* – खाना, सोना, यौन-जीवन तथा रक्षा करना – ये पशु के भी कार्य हैं और आप भी वही कार्य कर रहे हो। तो आप पशु से किस प्रकार भिन्न हुए? आप मर जायेंगे और पशु की भी मृत्यु होगी। किन्तु यदि आप कहें कि, ''मैं सौ वर्षों के बाद मरूँगा और यह चींटी एक घण्टे के बाद मरेगी।'' तो इसका अर्थ यह नहीं कि आप स्थाई हो। यह तो केवल समय का प्रश्न है। यदि इस विशाल ब्रह्माण्ड को लें – यह भी विनष्ट हो जाएगा। जिस प्रकार आपका शरीर नष्ट हो जाएगा उसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड भी नष्ट हो जाएगा। संहार। यह प्रकृति का विधान है कि सारी वस्तुएँ विलीन हो जाएँगी।

अतः यह स्वप्न है। अन्तर केवल इतना है कि यह दीर्घ अवधि का स्वप्न है। अन्य कुछ नहीं। किन्तु इस मनुष्य शरीर को पाने का लाभ यह है कि इस स्वप्न में आप वास्तविकता या सच्चाई की (भगवान् की) अनुभूति कर सकते हो। यही लाभ है।

रात में जब तुम स्वप्न देखते हो तो अवधि केवल आधे घण्टे की रहती है। किन्तु यह दिन का स्वप्न बारह घण्टे या इससे भी अधिक चलता है। यही अन्तर है।

इसलिए यदि आप इस स्वप्न का लाभ नहीं उठाते तो आप सारी वस्तुओं को खो देते हो।

छात्र – तो क्या मैं आधा सोया हूँ?

श्रील प्रभुपाद – हाँ। स्थिति यही है, अतएव वैदिक ग्रन्थ कहते हैं *उत्तिष्ठ* – उठो! उठो! *जाग्रत* – जगो। *प्राप्य वरान् निबोधत* – अब तुम्हें सुवसर मिला है, इसका उपयोग करो। *तमसि मा ज्योतिर्गमय* – अंधकार में मत रहो, प्रकाश में आ जाओ। ये वैदिक निर्देश हैं। हम भी इन्हीं निर्देशों की शिक्षा दे रहे हैं। ''वास्तविकता यहाँ है – श्रीकृष्ण। इस अंधकारमय स्थान में मत रहो। इस ऊँची चेतना को प्राप्त करो।''

जितामित्र प्रभु का विज्ञापन

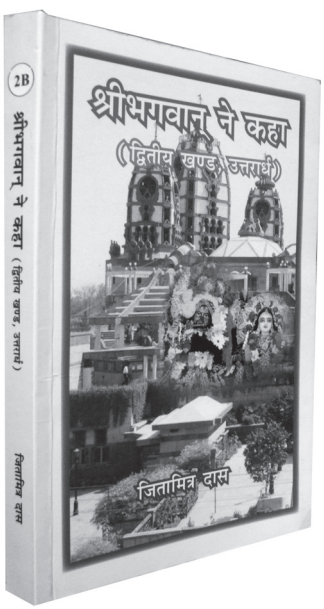

'भगवद्दर्शन' की सुप्रसिद्ध लेखमाला 'श्रीभगवान् ने कहा' का तीसरा खण्ड (द्वितीय अध्याय, उत्तरार्ध, श्लोक ३९-७२) पाठकों के लिए उपलब्ध है।

सम्पर्क –
इस्कॉन, हरे कृष्ण हिल
संत नगर, मेन रोड, ईस्ट ऑफ कैलाश
नई दिल्ली – ११००६५
दूरभाष –
(०११)२६२३५१३३-३७
(एक्स्टेंशन ११०)

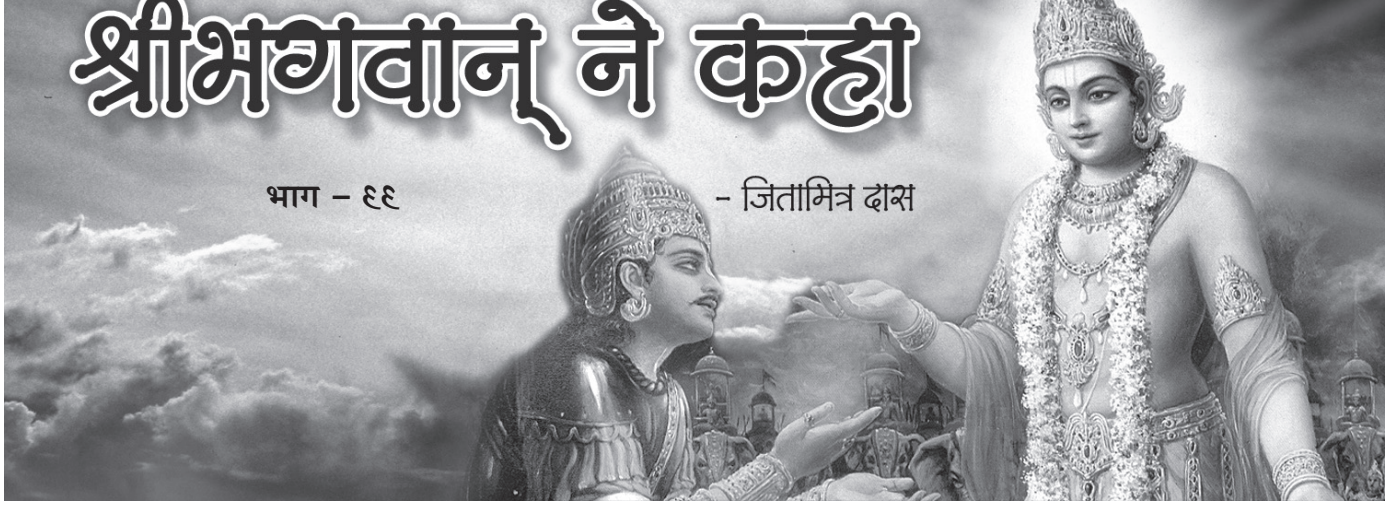

श्रीभगवान् ने कहा

भाग – ९९

– जितामित्र दास

एक सामान्य जन्तु के उदाहरण से श्रीकृष्ण अर्जुन को इंद्रियसंयम की शिक्षा देते हैं।

यदा संहरते चायं
कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।

अर्थात् 'जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को संकुचित करके खोल के भीतर कर लेता है, उसी तरह जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय विषयों से खींच लेता है, वह पूर्ण चेतना में दृढ़तापूर्वक स्थिर होता है।'

(भगवद्गीता, अध्याय २ श्लोक ५८)

इस श्लोक में भगवान् स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति के लक्षणों का वर्णन करते हुये एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण दे रहे हैं। श्लोक संख्या ५४ में अर्जुन ने जो चार प्रश्न पूछे थे, उनमें से तीसरा प्रश्न था – स्थिर बुद्धिवाला व्यक्ति किस प्रकार बैठता है? तो यहाँ पर बैठने का अर्थ है – कुछ समय के लिये इन्द्रियों के कार्य-कलाप बन्द कर देना। यहाँ पर भगवान् कछुये का उदाहरण दे करके हमें समझा रहे हैं कि हमें किस प्रकार अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से खींचना चाहिये।

कछुये का उदाहरण

कछुआ एक ऐसा जन्तु है जिसके शरीर में केवल एक ही मुख्य हड्डी होती है, और वह है, उसकी पीठ। यह पीठ एक खोल के आकार की होती है तथा उसका शरीर इस प्रकार का बना हुआ होता है कि जिस समय उसे कुछ खतरा दिखायी देता है तो वह तुरन्त अपना शिर तथा चारों पैर उस पीठ की खोल के अन्दर कर लेता है। ऐसी स्थिति में वह ऐसा लगता है जैसे वह मर गया हो। यदि आप उसे छुयें तो ऐसा लगेगा कि यह एक निर्जीव वस्तु है। उसे उठा कर फेंक दें तो भी वह ऐसा ही लगेगा मानो वह निर्जीव हो, उसमें कोई गति नहीं मालुम पड़ती है। उसकी पीठ इतनी कठोर होती है कि उसके शरीर को उठा कर फेंकने में भी उसे कोई कष्ट नहीं होता है। उसकी पीठ की कठोरता का अनुमान इस बात से लग जाता है कि योद्धागण जब ढाल-तलवार से युद्ध करते हैं तो तलवार की चोट से अपने शरीर की रक्षा करने के लिये वे जिस ढाल का प्रयोग करते हैं वह कछुये की पीठ की बनी हुयी होती है। इस प्रकार कछुआ अपनी पीठ का प्रयोग अपनी सुरक्षा के लिये करता है।

कछुये के पाँच अंग

कछुये का शरीर इस प्रकार का बना हुआ होता है कि उसकी पीठ के चारों ओर उसके चार पैर तथा एक शिर अर्थात् कुल मिला कर पाँच अंग होते हैं। ये पाँचों अंग कछुये के द्वारा इतने अधिक नियन्त्रित होते हैं कि जैसे ही उसे किसी प्रकार के संकट का आभास होता है, वह तुरन्त अपने पाँचों अंगो को अपनी पीठ के अन्दर इस प्रकार समेट लेता है, कि मानो उसके पास ये पाँचों अंग हैं ही नहीं।

कछुये का ही उदाहरण क्यों?

अब प्रश्न उठता है कि भगवान् ने यहाँ पर कछुये का ही उदाहरण क्यों दिया? क्योंकि ऐसे अन्य कीड़े भी हैं जो संकट का आभास होने पर अपने पैरों को समेट लेते हैं। किन्तु कछुये में अन्य कीड़ों की अपेक्षा कुछ विशेषता है। अन्य कीड़े अपने शिर को समेट नहीं सकते। वे केवल अपने पैरों को ही समेटते हैं तथा उनके पैरों की संख्या या तो चार होती है या चार से अधिक कोई सम संख्या होती है। इस प्रकार उन कीड़ों द्वारा समेटे हुये अंगों की संख्या पाँच कभी भी नहीं होती है। चूँकि हमारे शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा कछुये के शरीर में समेटे जाने वाले अंगों की संख्या भी पाँच ही है, इसलिये कछुये का उदाहरण सर्वथा उपयुक्त है।

इन्द्रियाँ श्रीकृष्ण-सेवा हेतु

इस श्लोक पर प्रवचन करते हुये न्यूयार्क में दिनांक १५-४-१९६६ को श्रील प्रभुपाद ने कहा था – '... हमारे लिये यह जानना अत्यन्त

आवश्यक है कि हमारी इन्द्रियाँ किसी विशेष उद्देश्य के लिये हैं... *हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते (चै.च.मध्य १९.१७०)।* वास्तव में ये इन्द्रियाँ मेरी नहीं हैं। ये इन्द्रियाँ भगवान् के द्वारा दी गयी हैं। .... परन्तु हमें अपनी इन्द्रियों का बहुत अधिक अभिमान है। परन्तु ये इन्द्रियाँ हमें भगवान् के द्वारा उसी प्रकार दी गयी हैं जिस प्रकार पिता के द्वारा कोई खेलने की वस्तु बच्चे को दी जाती है। हम भौतिक जगत् को भोगना चाहते थे। इसलिये भगवान् ने हमें ये भौतिक इन्द्रियाँ दी हैं। ठीक है ! तुम भोगो ! तुम इस भौतिक जगत् का अनुभव कर लो और जब तुम्हें अनुभव हो जाये कि तुम सुखी नहीं हो तो तुम पुनः मेरे पास वापस आ जाना। तो इन्द्रियों का वास्तविक प्रयोजन भगवान् की सेवा करना है। .....' तो यहाँ पर श्रील प्रभुपाद यह कहना चाहते हैं कि यदि हम इन भौतिक इन्द्रियों को श्रीकृष्ण की सेवा में लगायें तो हमें पुनः आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हो जायेगा जिसमें आध्यात्मिक इन्द्रियाँ हैं। आध्यात्मिक इन्द्रियाँ केवल श्रीकृष्ण की सेवा करने के लिये ही होती हैं।

माया की सेवा में इन्द्रियाँ

श्रीमद्भागवत (७.९.४३) में प्रह्लाद महाराज नृसिंह देव के प्रति प्रार्थना करते हुये कहते हैं - *शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्।* अर्थात् 'मैं उन महामूर्खों के लिये शोक कर रहा हूँ जो आपके गुणगान से विमुख होकर इन्द्रियों के विषयों के माया-सुख को प्राप्त करने के लिये बड़ी-बड़ी योजनाओं का भार ढोते रहते हैं।' माया के सुख का अर्थ यह है कि भोग करने के प्रयासों में सुख के स्थान पर न केवल अतृप्त रहना अपितु दुःख प्राप्त करना। इतना कष्ट पाने के बावजूद भी जीव अपनी इन्द्रियों को माया की सेवा से अलग नहीं कर पाता है जिस प्रकार कोई कीड़ा जब मकड़ी के जाल में फँस जाता है तो वह अपने प्रयास के द्वारा अपने को छुड़ा नहीं पाता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कल्याण कल्पतरु नामक पुस्तक (२.५.३) में लिखते हैं - 'जब तक जीव इस भौतिक शरीर में वास करता है तब तक वह आँख, कान, नाक, जिह्वा तथा स्पर्श इनसे उत्पन्न भौतिक इच्छाओं के द्वारा इधर-उधर खींचा जाता है। देखो! जीव की भयानक दुर्गति देखो! जीव कृष्ण का भजन करना चाहता है, परन्तु भौतिक शरीर में निमग्न हो कर वह अपने वास्तविक स्वार्थ को भूल जाता है।'

स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति की क्या विशेषता है?

तो यह माया की सेवा में लगे बद्धजीव की स्थिति है। परन्तु स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति की क्या योग्यता है? उसकी योग्यता यह है कि जैसे ही उसकी इन्द्रियों के समक्ष माया के विषय आते हैं, वह तुरन्त ही खतरा समझ कर अपनी इन्द्रियों को उन विषयों से समेट लेता है। और यह योग्यता आती है अपनी इन्द्रियों को सदैव श्रीकृष्ण की सेवा में लगाने से।

चूँकि हमारे शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा कछुये के शरीर में समेटे जाने वाले अंगों की संख्या भी पाँच ही है, इसलिये कछुये का उदाहरण सर्वथा उपयुक्त है।

तुलना

अब हम पाँच ज्ञानेन्द्रियों की अलग-अलग चर्चा करेंगे कि स्थिर बुद्धिवाला व्यक्ति किस प्रकार उन्हें माया की सेवा से समेट लेता है।

१) श्रवण इन्द्रिय : कृष्णभावनाभावित व्यक्ति की यह श्रवण इन्द्रिय (कान) सदा कृष्ण का गुणगान सुनने में लगी रहती है। जिस समय उसे कृष्ण-कथा श्रवण करने का अवसर प्राप्त होता है उस समय वह भक्त अपनी श्रवण इन्द्रिय को बाहर फैला कर कृष्ण-कथा का श्रवण उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कछुआ सुरक्षित स्थान में अपने अंगों को फैला लेता है। परन्तु सांसारिक चर्चाओं को चलता देख वह अपनी श्रवण इन्द्रिय को उसी प्रकार समेट लेता है जिस प्रकार कछुआ संकट काल में अपने अंगों को समेट लेता है। इसके उदाहरण श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज हैं। जिस समय संसारी लोग उनसे व्यर्थ की चर्चा करते थे तो वे बिलकुल बहरे और गूंगे बन जाते थे।

२) चक्षु इन्द्रिय : कृष्णभावनाभावित व्यक्ति की यह चक्षु इन्द्रिय (आँखें) सदा कृष्ण के रूपों तथा कृष्ण-भक्तों के दर्शन में लगी रहती है। जब इनके दर्शन का अवसर प्राप्त होता है तो भक्त अपनी चक्षु इन्द्रिय को बाहर फैलाकर उसी प्रकार इनका दर्शन करता है जिस प्रकार कछुआ सुरक्षित स्थान में अपने अंगों को फैला लेता है। परन्तु जिस समय भक्त को माया के रूपों के दर्शन का अवसर प्राप्त होता है उस समय वह अपनी नेत्र इन्द्रिय को उसी प्रकार समेट लेता है जिस प्रकार कछुआ संकट काल में अपने अंगों को समेट लेता है। जिस समय रावण सीताजी को बलपूर्वक लंका का वैभव दिखाकर अपने वश में करना चाहता था उस समय सीताजी ने अपनी नेत्र इन्द्रिय को समेट लिया।

३) स्पर्श इन्द्रिय : कृष्णभावनाभावित व्यक्ति की यह स्पर्श इन्द्रिय (त्वचा) कृष्ण भक्तों के शरीर का स्पर्श करने में तथा श्रीकृष्ण के चरणों की धूल का स्पर्श करने में लगी रहती है। ऐसे अवसरों पर भक्त अपनी स्पर्श इन्द्रिय को बाहर फैलाकर भक्तों के शरीरों तथा श्रीकृष्ण की चरणधूल के स्पर्श का उसी प्रकार अनुभव करता है जिस प्रकार कछुआ सुरक्षित स्थान में अपने अंगों को फैला लेता है। परन्तु इन्द्रियतृप्ति के स्पर्श का अवसर प्राप्त होने पर वह कछुये के

समान अपनी स्पर्श इन्द्रिय को समेट लेता है। जिस समय देवताओं की प्रार्थना से पार्वती शिवजी के द्वारा पुत्र प्राप्त करने के लिये उनके जननांग का स्पर्श कर रही थीं, उस समय शिवजी ने अपनी स्पर्श इन्द्रिय को समेट लिया।

४) रसना इन्द्रिय : कृष्णभावनाभावित व्यक्ति की यह रसना इन्द्रिय (जिह्वा) श्रीकृष्ण को अर्पित प्रसाद का रसास्वादन करने में लगी रहती है। कृष्णप्रसाद मिलने पर भक्त कछुये के समान अपनी रसना इन्द्रिय को बाहर फैलाकर कृष्णप्रसाद का आस्वादन करता है, और ऐसा भोजन प्राप्त होने पर जो श्रीकृष्ण को अर्पित नहीं हुआ है या वह श्रीकृष्ण को अर्पित करने योग्य नहीं है, वह अपनी रसना इन्द्रिय को उसी प्रकार समेट लेता है जिस प्रकार कछुआ संकट काल में अपने अंगों को समेट लेता है। जिस समय श्रील प्रभुपाद छोटे से बालक थे उस समय उन्हें टाइफाइड हो गया था। उनके जीवन की रक्षा के लिये उन्हें मुर्गी के बच्चे का सूप (चिकन सूप) दिया गया, उस समय बालक ने अपनी रसना इन्द्रिय को समेट लिया तथा उसे देखकर उल्टी कर दी।

५) घ्राण इन्द्रिय : कृष्णभावनाभावित व्यक्ति की यह घ्राण इन्द्रिय (नासिका) श्रीकृष्ण को अर्पित पुष्पों की सुगन्ध का आस्वादन करने में लगी रहती है। श्रीकृष्ण को अर्पित पुष्पों तथा माला की सुगन्ध ग्रहण करने का अवसर प्राप्त होने पर भक्त अपनी घ्राण इन्द्रिय को बाहर फैलाकर दिव्य गन्ध का आस्वादन करता है, परन्तु जब ऐसी गन्ध ग्रहण करने का अवसर प्राप्त होता है जो या तो श्रीकृष्ण को अर्पित नहीं हुयी है या वह श्रीकृष्ण को अर्पित करने योग्य नहीं है, वह अपनी घ्राण इन्द्रिय को कछुये के समान समेट लेता है। जिस समय हरे कृष्ण मन्दिरों के भक्तगण भगवान् के लिये फूलों की मालायें बनाते हैं उस समय वे अपनी घ्राण इन्द्रिय को समेट लेते हैं क्योंकि जब तक श्रीकृष्ण को वे मालायें अर्पित नहीं होंगीं तब तक वे उन्हें सूँघना नहीं चाहते हैं।

उसकी बुद्धि स्थिर है

श्लोक के अन्तिम शब्द हैं – तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। अर्थात् उसकी बुद्धि स्थिर है। इसका अर्थ है कि जब व्यक्ति इतनी योग्यता प्राप्त कर लेता है कि वह अपनी इन्द्रियों को माया की सेवा से तुरन्त हटा ले तभी उसकी बुद्धि स्थिर हो सकती है। श्रीमद्भागवत (५.५.४) में भगवान् ऋषभ देव कहते हैं –

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म
यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽय –
मसन्नपि क्लेशद आस देहः।।

अर्थात् 'जब मनुष्य इन्द्रियतृप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मान लेता है तो वह भौतिक रहन-सहन के पीछे प्रमत्त हो कर सभी प्रकार के पापकर्मों में प्रवृत्त होता है। उसे ज्ञात नहीं रहता कि अपने विगत पापकर्मों के ही कारण उसे यह क्षणभंगुर शरीर प्राप्त हुआ है जो दुःखों का भण्डार है। वास्तव में जीवात्मा को भौतिक देह नहीं मिलना चाहिये था, किन्तु इन्द्रियतृप्ति के लिये ऐसा हुआ है। अतः मैं मानता हूँ कि बुद्धिमान प्राणी के लिये यह शोभा नहीं देता कि वह पुनः इन्द्रियतृप्ति में प्रवृत्त हो, जिससे एक के बाद दूसरा भौतिक शरीर उसे प्राप्त होता है।'

इन्द्रियतृप्ति के लिये इन्द्रियों का निरन्तर उपयोग करते रहने से जीवात्मा अहंकार के कारण मोहग्रस्त रहता है, जिससे वह कृष्ण के साथ अपने शाश्वत सम्बन्ध को भूल जाता है।

इन्द्रियतृप्ति के लिये इन्द्रियों का निरन्तर उपयोग करते रहने से जीवात्मा अहंकार के कारण मोहग्रस्त रहता है, जिससे वह कृष्ण के साथ अपने शाश्वत सम्बन्ध को भूल जाता है। इस प्रकार हमें समझना चाहिये कि बुद्धि को श्रीकृष्ण के चरणों में स्थिर करने के लिये यह आवश्यक है कि इन्द्रियतृप्ति के कार्यों को बन्द किया जाये।

प्रतिष्ठिता शब्द की व्याख्या : यहाँ पर बुद्धि के लिये प्रतिष्ठिता शब्द का प्रयोग हुआ है। यह शब्द प्र उपसर्ग के साथ तिष्ठिता के संयोग से बना है। प्र का अर्थ है – प्रकृष्ट रूप से तथा तिष्ठिता का अर्थ है – बैठायी गयी। इस प्रकार प्रतिष्ठिता शब्द का अर्थ हुआ – ऐसी वस्तु जो अच्छी प्रकार से बैठायी गयी है। तो यहाँ पर भगवान् कह रहे हैं – *तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।* अर्थात् उस व्यक्ति की बुद्धि अच्छी प्रकार से बैठायी गयी है।

शरीर की रथ के साथ तुलना : शास्त्रों में शरीर की तुलना रथ से, इन्द्रियों की तुलना घोड़ों से, मन की तुलना लगाम से तथा बुद्धि की तुलना सारथी से की गयी है। यदि सारथी अपने आसन पर ठीक से तथा स्थिरतापूर्वक बैठा हो तो वह घोड़ों को अपने वश में कर सकता है। यदि सारथी स्वयं ठीक से अपने आसन पर न बैठा हो या कभी बैठता हो, कभी खड़ा होता हो तो वह घोड़ों को ठीक से वश में नहीं कर सकता है। इस शरीर रूपी रथ में जीवात्मा वह यात्री है जो रथ के द्वारा इस संसार रूपी जंगल को पार करके भगवान् के धाम में जाना चाहता है, जो उसका घर है। हमें समझना चाहिये कि किसी भी रथ को चलाने के लिये सारथी का अत्यन्त महत्व होता है। इस शरीर रूपी रथ में पाँच इन्द्रिय रूपी पाँच घोड़े हैं। ये पाँच इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर भागती हैं जिस प्रकार किसी रथ में जुते हुये पाँच अनियन्त्रित घोड़े अपने-अपने भोजन की ओर भागते हों। तो ऐसे अनियन्त्रित रथ में बैठे यात्री की कितनी दुर्गति होती होगी? ऐसी स्थिति में बुद्धि रूपी सारथी यदि अच्छी प्रकार सावधान हो तो वह इन पाँच इन्द्रिय रूपी अनियन्त्रित घोड़ों

को अपने वश में कर सकता है तथा इन्हें ठीक रास्ते पर आगे बढ़ा सकता है। इस श्लोक में भगवान् यह कह रहे हैं कि यदि किसी रथ में पाँच इन्द्रियरूपी घोड़ों को अपने-अपने विषयों की ओर जाने से नियन्त्रित किया जा रहा है तो इसका अर्थ है कि उस रथ का सारथी बहुत सावधान है। भगवान् प्रतिष्ठिता बुद्धि का यह लक्षण बतला रहे हैं।

इन्द्रियों के कार्य बन्द करने की बात नहीं है : चूँकि इस श्लोक में भगवान् कह रहे हैं कि जो व्यक्ति इन्द्रियों को विषयों से खींच लेता है उसकी बुद्धि स्थिर है, अतः कोई व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि अन्तिम लक्ष्य यही है कि इन्द्रियों के सभी कार्य बन्द कर दिये जायें। परन्तु ऐसा नहीं है। हमें यह समझना चाहिये कि यहाँ पर भगवान् ने कछुये का उदाहरण दिया है। जिस प्रकार कछुआ संकट के समय पर ही अपने अंगों को समेटता है और जैसे ही संकट दूर हो जाता है कि वह पुनः अपने अंगों को फैला कर काम करने लगता है उसी प्रकार हमारी इन्द्रियाँ भी श्रीकृष्ण की सेवा करने के लिये हैं। उक्त प्रवचन में आगे श्रील प्रभुपाद ने कहा – '..... आप इन्द्रियों से रहित नहीं हैं। और न ही ऐसा है कि आध्यात्मिक चेतना में स्थित होने के पश्चात् आपकी इन्द्रियाँ समाप्त हो जायेंगीं या निष्क्रिय हो जायेंगीं। क्योंकि जीवन का अर्थ है – इन्द्रियाँ। इन्द्रियों के बिना कोई जीवन नहीं है। परन्तु यह तो इन्द्रियों को शुद्ध करने की विधि है।.....'

इस श्लोक के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं – '..... यहाँ पर सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कछुये का है। वह किसी भी समय अपने अंगों को समेट सकता है और पुनः विशिष्ट उद्देश्यों से उन्हें प्रकट कर सकता है। इसी प्रकार कृष्णभावनाभावित व्यक्तियों की इन्द्रियाँ भी केवल भगवान् की विशिष्ट सेवाओं के काम आती हैं अन्यथा उनका संकोच कर लिया जाता है। अर्जुन को उपदेश दिया जा रहा है कि वे अपनी इन्द्रियों को आत्मतुष्टि में न लगा करके भगवान् की सेवा में लगायें। अपनी इन्द्रियों को सदैव भगवान् की सेवा में लगाये रखना कूर्म द्वारा प्रस्तुत दृष्टान्त के अनुरूप है, जो अपनी इन्द्रियों को समेटे रखता है।'

इस श्लोक के बंगाली पद्यानुवाद में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं –

गोदास इन्द्रियसुखे विचलित सदा।
गोस्वामी हयेछे धीर आत्माते सर्वदा।।
ताई से इन्द्रिय सब कूर्म अङ्ग मत।
इन्द्रियभोगार्थ सदा विषये विरत।।
अतएव जानि ताँर प्रज्ञा प्रतिष्ठित।
से जन उपाधि मुक्त गोस्वामी विदित।।

इस पद्यानुवाद में श्रील प्रभुपाद गोदास तथा गोस्वामी इन दो शब्दों का प्रयोग करते हैं। गो का अर्थ है – इन्द्रियाँ। इस प्रकार गोदास का अर्थ हुआ, वह व्यक्ति जो इन्द्रियों का सेवक है। ऐसा व्यक्ति इन्द्रियों के सुख के लिये सदा विचलित रहता है। परन्तु जो गोस्वामी अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी है वह आत्मा अर्थात् श्रीकृष्ण की सेवा में स्थित होने के कारण इन्द्रियों के विषय भोगों से सदा विरक्त रहता है और वह इस भौतिक जगत् की सभी उपाधियों से मुक्त रहता है।

हरे कृष्ण!

बी.टी.जी. यात्रा सेवा की

चार धाम यात्रा २००९

उत्तरांचल की शोभा बढ़ाने वाली गड़वाल हिमालय की बादलों से ढकी गगनचुंबी चोटियाँ, आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करने वाले जिज्ञासुओं की प्रतीक्षा में हैं।

इन्हीं सुन्दर पर्वतमालाओं के बीच स्थित हैं भारत के चार सर्वाधिक पवित्र स्थल – यमुनोत्री, गंगोत्री, श्रीकेदारनाथजी और श्रीबद्रीनाथजी। सदियों से परमसत्य की खोज में साधु और सन्तों ने इन गूढ़ घाटियों में भ्रमण किया है। यमुनोत्री, गंगोत्री, श्रीकेदारनाथ और श्रीबद्रीनाथ समस्त तीर्थों में सर्वाधिकपवित्र हैं। इनकी यात्रा न केवल व्यक्ति के पापों को धो डालेगी अपितु निश्चित ही उसे जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त भी करेगी। इन स्थलों की यात्रा के लाभ अवर्णननीय हैं। कहा जाता है कि इन्हीं स्थलों पर पृथ्वी और स्वर्ग का मिलन होता है, और यहाँ जन्म लेने अथवा शरीर त्यागने का वरदान विरलों को ही प्राप्त होता है।

दिनांक – १० मई से २४ मई २००९यात्रा दिल्ली से आरम्भ और समाप्त होगी
शुल्क – १८,९०० प्रति व्यक्ति (इसमें रहने, प्रसाद एवं बस द्वारा आंतरिक यात्रा का समावेश है)
अधिकतम सीटें – ४०

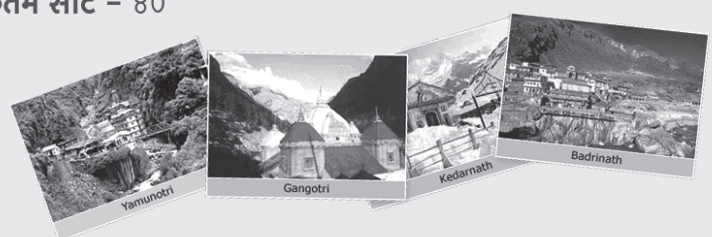

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के केंद्रों की सूची *

संस्थापकाचार्यः श्री श्रीमद् ए.सी.भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

अहमदाबाद, गुजरात हरे कृष्ण धाम, सेटेलाइट रोड, गांधीनगर हायवे क्रॉसिंग, ३८० ०५८ /दूरध्वनि: (०७९) २६८६-१९४५, १६४५, २३५०

अमृतसर, पंजाब, हरे कृष्ण मंदिर, प्रभुपाद मार्ग, चौक मोनी बाजार, लच्छमनसार, अमृतसर/दूरध्वनि: (०१८३) २५४०१७७

इंदौर, म.प्र., निपानिया, आगरा-मुम्बई बाईपास रोड, इन्दौर, दूरध्वनि: (०७३१) ४९७२६६५

इलाहाबाद, उ.प्र., ए/१६१, काशी राजनगर, बल्वघाट २११००३,/ दूरध्वनि:(०५३२) २४१६७१८

उज्जैन, मध्यप्रदेश, समुदाय केन्द्र, महानन्दनगर ४५६०१०/ दूरध्वनि:(०७३४) २५२१०२०

उधमपुर, जम्मु व काश्मीर, श्रील प्रभुपाद आश्रम, श्रील प्रभुपाद मार्ग, श्रील प्रभुपाद नगर/ दूरध्वनि: (०१९९२)२७०२९८, २७६१४६

कोलकाता, प. बंगाल ३-सी, अल्बर्ट रोड, ७०००१७/ दूरध्वनि: (०३३)२२८७-३७५७, -६०७५, -८२४२

कटरा, जम्मु व काश्मीर, श्रील प्रभुपाद आश्रम, श्रीकालिका माता मंदिर, कटरा वैष्णो देवी/ दूरध्वनि: (०१९९१) २३३०४७

कुरुक्षेत्र, हरियाणा ३६९, गुदड़ी मोहल्ला, मेन बाजार, १३२११८/ दूरध्वनि: (०१७४४) २३४८०६

कोयंबटूर, तमिलनाडू, श्री जगन्नाथ मंदिर, १०० फीट नई स्कीम रोड, हरे कृष्ण धाम, कोयंबटूर ६४१०११/ दूरध्वनि: (०४२२) २६२-६५०९, -६५०८

गुवहाटी, आसाम श्री श्री रुक्मिणी कृष्ण मंदिर माउंट हरे कृष्ण, उलूबारी चराली, दक्षिण सरनिया, ७८१ ००७ /दूरध्वनि: (०३६१) २५४५९६३

चंडीगढ़, पंजाब हरे कृष्ण धाम, दक्षिण मार्ग, सेक्टर ३६-बी, १६० ०३६ /दूरध्वनि: (०१७२) २६०१५९०, २६०३२३२

लुधियाना, पंजाब, स्टर्लिंग टावर, वृन्दावन रोड, सिविल लाइन्स, १४१००१/ दूरध्वनिः (१६१)३११८८९७, ९८१५९४०००५, २७७०६००

जयपुर, इस्कॉन, गिरधारी-दाऊजी मंदिर, धोलइ, विजय पथ के सामने, मानसरोवर, ३०२०२० / दूरध्वनि:(०४१४)२७८२७६५,२७८१८६०

जम्मु, जम्मु व काश्मीर, शकंर चैरिटेबिल ट्रस्ट, शक्ति नगर, ए जी कार्यालय के निकट, १८२ १०१/ दूरध्वनि: (०१९९१) २५८२३०६

तिरुपति, आ.प्र., के. टी.रोड, विनायक नगर, ५१७ ५०७ / दूरध्वनि: (०८७७) २२३०११४, २२३०००९

त्रिवेंद्रम, केरल, टी.सी. २२४/१४८५. डब्ल्यू.सी. हॉस्पिटल रोड, थाइकाउड, ६९५ ०१४ /दूरध्वनि: (०४७१) ३२८१९७

द्वारका, गुजरात भारतीय भवन, देवी भवन रोड़, द्वारका, ३६१३३५/ दूरध्वनि: (०२८९२) ३४६०६

नई दिल्ली, हरे कृष्ण हिल, संत नगर, मेन रोड, इस्ट ऑफ कैलाश, ११००६५ /दूरध्वनि: (०११) २६२३५१३३,४,५,६,७

नई दिल्ली ४१/७७, पंजाबी बाग (पश्चिमी), ११००२६ /दूरध्वनि: २५२२२८५१, २५२२७४७५, ५५१३६२००

नोयडा, उ.प्र., श्री श्रीगोविन्द मंदिर, भक्तिवेदान्त विद्यापीठ, ए/५, सैक्टर ३३, एन.टी.पी.सी. कार्यालय के सामने/दूरध्वनि: (०१२०) २५०६२११/ २५०६३६३

नागपुर : श्री श्री राधा गोपीनाथ मंदिर, भरतवाडा रोड़, गुलमोहर नगर के पास, रामानुज नगर, कालमन मार्केट, नागपुर ४४०००८, दूरध्वनि - ९३७१०६४१०२, ९४२३६३५३११

पटना, बिहार, आर्य कुमार रोड, राजेंद्र नगर ८०००१६/ दूरध्वनिः(०६१२) ६८७६३७, ६८५०८१

पुरी, उड़ीसा, भक्ति कुटी, स्वर्ग द्वार, पुरी ७५२००१/ दूरध्वनि: (०६७५२) २३१४४०

पूना : ४, तारापुर रोड, कैम्प, ४११ ००१ /दूरध्वनि: (०२०) २६३२३२८, २६३६१८५५

बड़ोदा, गुजरात, हरे कृष्ण धाम, हरिनगर पानी की टंकी के निकट, गोत्री रोड, ३९००२१ /दूरध्वनि: (०२६५) २३१०६३०, २३३१०१२

बेलगाम, कर्नाटक, राधा गोकुलानंद मंदिर, २११, श्रील प्रभुपाद मार्ग, शुक्रवार पेठ, टिलकवाडी, ५९०००६ /दूरध्वनि: (०८३१) २४३६२६७, २४००१०८

बेंगलोर, कर्नाटक, हरे कृष्ण हिल, १ 'आर' ब्लॉक, राजाजी नगर, सेकंड स्टेज, कॉर्ड रोड, ५६००१० /दूरध्वनि:(०८०) ३४७१९५६

बेंगलोर, कर्नाटक, श्रीजगन्नाथ मंदिर, नम्बर ५ श्रीपुरम, पहला क्रॉस, शेषाद्रिपुरम, बेंगलोर ५६००२०/ दूरध्वनि:(०८०) २३५६५७०८

भुवनेश्वर,उड़ीसा, नेशनल हायवे न. ५, आय. आर. सी. विलेज, ७५१०१५ दूरध्वनि: (०६७४) २५५३५१७, २५३३४७५, २५५४२८३

हरिद्वार, श्रील प्रभुपाद आश्रम, गौरांग हाऊस, नई बस्ती, भीमगोडा २४९४०१/ दूरध्वनि: (०१३३४) २६०८१८, ९४११३७१८७०

* उपर्युक्त केन्द्र सूची आंशिक है। सम्पूर्ण सूची के लिए btghindi@pamho.net पर लिखें।

हैद्राबाद, आ.प्र.,हरे कृष्ण धाम, नामपल्ली, स्टेशन रोड, ५००००१ /दूरध्वनि: २४७४४९६९, २४६०७०८९

रायपुर, छत्तीसगढ़, हरे कृष्ण लैण्ड, आलोपी नगर, महर्षि विद्यालय के सामने, तटिबन्ध, रायपुर ४२९००१/ दूरध्वनिः (०७७१)५०३७५५५

चेन्नई, तमिलनाडु, हरे कृष्ण धाम, भक्तिवेदान्त स्वामी रोड, इ.सी.आर. रोड, इन्जामबक्कम, ६०००४१ /दूरध्वनि: (०४४) २५०१९३०३, २५०१९१४७

मायापुर, प.बंगाल, श्री मायापुर चंद्रोदय मंदिर, श्रीमायापुर धाम, जिला नदिया, ७४१३१३ /दूरध्वनि: (०३४७२) २४५२३९, २४५२४०, २४५२३३

मुंबई, मीरा रोड, सृष्टि कॉम्प्लैक्स, श्री श्री राधा गिरिधारी मंदिर, मीरा रोड (पूर्व), रोयल कालेज के सामने, जिला ठाणे /दूरध्वनि: (०२२) २८११७७९५, २८११७७९६

मुंबई, हरे कृष्ण धाम, जुहू ४०० ०४९ / दूरध्वनि: (०२२) २६२० ६८६०

मुंबई, श्री श्री राधा गोपीनाथ मंदिर, ७, के.एम. मुन्शी मार्ग, भारतीय विद्या भवन के सामने, चौपाटी, मुंबई ४०० ००७ /दूरध्वनि: (०२२) २३६९ ७२२८

लखनऊ, उ.प्र., १ अशोक नगर, गुरु गोविंद सिंह मार्ग, २२६०१८/ दूरध्वनि: (०५२२) २२३५५६, २७१५५१

कानपुर, उ.प्र., मैनावती मार्ग, बिठूर रोड, नवाबगंज, कानपुर २०८००२, दूरध्वनि:०९३०७१८८११७, kanpur@pamho.net

वृंदावन, उ.प्र., कृष्ण बलराम मंदिर, भक्तिवेदान्त स्वामी मार्ग, रमण-रेती, जिला मथुरा, २८११२४ /दूरध्वनि: (०५६५) २५४००२१

वल्लभ विद्यानगर, गुजरात, पॉलिटेक्निक कॉलेज के सामने, ३८८१२१ /दूरध्वनि: (०२६९२)२३०७९६, २३३०१२

विजयवाडा, आ.प्र., वेन्कटपलेम करकट्टा रोड, उन्दवल्ली गाँव, तडेपल्ली मण्डाल, विजयवाडा, जिला गुंटूर ५२२५०१/ दूरध्वनिः (०८६४५)२७२५१३

सिकंदराबाद, आ.प्र., २७, सेंट जॉन्स रोड, ५०००२६ / दूरध्वनिः(०४०) ७८०५२३२

सोलापुर, महाराष्ट्र, अमृत अपार्टमेन्ट, पुराना अक्कलकोट नगर। ४१३००५/ दूरध्वनि: ०९३७११७८३९३

पंढरपुर, महाराष्ट्र, हरे कृष्ण धाम, चन्द्रभागा नदी के पूर्वी तटपर, पंढरपुर, जिला सोलापुर। पिन ४१३३०४, दूरभाषः ०९४२३३३५९९१

सूरत, गुजरात, रेन्डर रोड, जहाँगीरपुर, ३९५००५/दूरध्वनि: (०२६१) ७६५८९१, ७६५५१६, ७७३३८६

श्रीरंगम्, तमिलनाडू, ९३ अन्नमण्डपम् रोड, ए-१ चैतन्य अपार्टमेन्ट, ६२०००६/ दूरध्वनि: (०४३१) ४३३९४५

वाराणसी, इस्कॉन, बी २७/८० दुर्गाकुण्ड रोड, दुर्गाकुण्ड पुलिस स्टेशन के पास, २२१०१०/ दूरध्वनि: (०५४२) २७६४२२, २२२६१७

विशाखापट्टनम्, इस्कॉन, ७-५-१०८ पाण्डुरंगपुरम् बीच रोड, ५३०००३/दूरध्वनि: (०८९१) २५२८३७६

झाँसी, उ.प्र., हरे कृष्ण मंदिर, अन्दर सैंयर गेट (काली बाडी के पास) झाँसी, २८४००२/दूरध्वनि: (०५१७) २४४३६०२

नासिक, महाराष्ट्र, जनरल वैद्य नगर, वृंदावन कॉलोनी, पूर्णिमा बस स्टॉप के पीछे, द्वारका, नासिक। पिन ४२२०११, दूरभाष-(०२५३) ६४५०००५, ९८५००७१२२७

गाजियाबाद, श्री श्रीराधा-मदनमोहन मंदिर, आर-११/३४, राजनगर। दूरध्वनिः (०१२०)२९६४२००

नोयडा, उ.प्र., ए-५, सैक्टर ३३, पिनः २०१३०१, दूरध्वनिः (०१२०) २५०६२११, २५०६२६२

वैष्णव दिनदर्शिका

१ मार्च से १० अप्रैल तक

मार्च २००९

रविवार १, श्री पुरुषोत्तम दास ठाकुर आविर्भाव।

शनिवार ७, अमलकी व्रत एकादशी।

रविवार ८, पारायण का समय ६:३९-१०:३४, श्रील माधवेन्द्र पुरी तिरोभाव।

बुधवार ११, श्रीगौरांग महाप्रभु आविर्भाव दिन, श्रीगौर पूर्णिमा (चन्द्रोदय तक उपवास)।

गुरुवार १२, श्रीजगन्नाथ मिश्र महोत्सव।

गुरुवार १९, श्रीवास ठाकुर आविर्भाव दिवस।

रविवार २२, पापमोचनी एकादशी।

सोमवार २३, पारायण का समय ६:२२-१०:२६, श्रील गोविन्द घोष तिरोभाव।

मङ्गलवार ३१, श्रीपाद रामानुजाचार्य आविर्भाव।

अप्रैल २००९

शुक्रवार ३, रामनवमीह्नभगवान श्रीरामचंद्र आविर्भावह्न दोपहर तक उपवास।

रविवार ५, कामदा एकादशी।

सोमवार ६, पारायण का समय ह्न ६:५८-१०:१८।

गुरुवार ९, श्री बलराम रासयात्रा, श्रीकृष्ण वसंत रास, श्री वंशीवदन ठाकुर आविर्भाव, श्री श्यामानंद प्रभु आविर्भाव।

थोथे चने

हाल ही में माँसाहार पर बोलते हुए अमरीकी राष्ट्रपति ओबामा बैरक ने कहा कि माँसाहार न केवल व्यक्तिगत रूप से, अपितु सामाजिक और पर्यावरण की दृष्टि से भी हानिकारक है। अपने कथन की पुष्टि करते हुए उन्होंने चौंकाने वाले आँकड़े तक प्रस्तुत कर दिये। किन्तु अत्यन्त ईमानदारी से उन्होंने स्वीकार किया कि स्वयं उनके लिए माँसाहार त्यागना सम्भव नहीं है।

अल्प बुद्धिमान व्यक्ति इस विषय पर उनके विस्तृत ज्ञान और ईमानदारी की सराहना कर सकता है। किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति प्रश्न पूछेगा, ''यदि माननीय प्रधानमंत्रीजी माँसाहार के भयावह परिणामों से अवगत हैं तो स्वयं वे इनका पालन क्यों नहीं करते?''

उत्तर सरल है। जब तक हमारे अन्दर इन्द्रियतृप्ति की इच्छायें हैं मात्र किताबी ज्ञान उसे जीवन में लागू करने में सहायता नहीं कर सकता। अर्जुन ने भगवद्गीता (३.३७) में श्रीकृष्ण से यही पूछा – ''जानते हुए भी क्यों हमें बलपूर्वक निषिद्ध कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ता है?''

यह पूछने की आवश्यकता नहीं है कि 'क्या आपने कभी स्वयं को किन्ही अदृश्य बेड़ियों में जकड़ा पाया है?' यदि नहीं, तो केवल कुछ दिनों के लिए सुबह की चाय या अखबार छोड़ने का प्रयास करें। आप समझ जायेंगे।

श्रीकृष्ण ने क्या उत्तर दिया? ''काम, अर्थात् भोग करने की इच्छा।''

श्रीकृष्ण का अंश होने के कारण आत्मा मूल रूप से पूर्ण शुद्ध और ज्ञानमय है। किन्तु अवैध इच्छायें उसके इस ज्ञान को ढक देती है; उसी प्रकार जैसे अग्नि धुएँ से, दर्पण धूल से अथवा भ्रूण गर्भाशय से ढका रहता है (भगवद्गीता ३.३८-३९)। धुएँ के कारण अग्नि, दर्पण पर पड़ी धूल के कारण उसमें हमारा प्रतिबिम्ब एवं गर्भाशय से ढके होने के कारण भ्रूण दिखाई नहीं देता। धुएँ, धूल और गर्भाशय की तुलना काम से की गई है, जिसे श्रीकृष्ण जीवात्मा का नित्य शत्रु बताते हैं।

किन्तु हमारे अस्तित्त्व में कहाँ छिपा होता है यह शत्रु?

हमारी पाँच इन्द्रियों में, मन में तथा बुद्धि में। (भगवद्गीता ३.४०)

नेत्रों से सुन्दर रूप, नासिका से मोहक गन्ध, कर्णों से सुरीले स्वर, जिह्वा से मधुर रस तथा त्वचा से कोमल स्पर्शकर हम इन्द्रियों से भोग करना चाहते हैं। इन्द्रियों द्वारा भोग अनुपलब्ध होने पर हम मानसिक कल्पनाओं द्वारा इनका भोग करते हैं। और ज्ञान तो तोड़-मरोड़कर तर्क-वितर्कों द्वारा अपने मुद्दे को सिद्ध करना बुद्धि द्वारा कामभोग है।

इन्द्रियकाम-भोग आत्मा के लिए एक विकृत स्थिति है, जिसकी उपस्थिति ज्ञान का जीवन में पालन करने में अवरोधक सिद्ध होती है। इसलिए वैदिक शास्त्र ऐसे व्यक्ति को गम्भीरता से नहीं लेते जो केवल 'गरजते' हैं। 'कथनी' यदि 'करनी' में परिवर्तित होती दिखाई नहीं देती तो समझना चाहिए कि या तो व्यक्ति के मुख से उसके हृदय में छिपी भोग इच्छायें बोल रही हैं, (जैसे कुछ प्रधानमंत्री भाषण से पूर्व कई घण्टे एक-एक शब्द और वाक्य बोलने का अभ्यास करते थे, या हैं) अथवा वह बेचारा जानते हुए भी निःसहाय है।

कुरुक्षेत्र के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र को युद्ध रोकने के लिए समझाते हैं। धृतराष्ट्र भी हमारे माननीय प्रधानमंत्रीजी के समान जानते थे – ''हाँ श्रीकृष्ण, आप जो कह रहे हैं सोलह आने सच है, किन्तु...'', ईमानदारी से स्वीकार करते हुए उन्होंने भी कहा, ''...तुम्हारे सद्वचन मेरे हृदय में उसी प्रकार नहीं ठहर रहे जिस प्रकार बादलों में बिजली नहीं ठहरती।''

सही-गलत में भेद जानते हुए भी दुर्योधन के प्रति आसक्ति ने उसे निःसहाय बना दिया था।

निःसहाय होना इतना बुरा नहीं है, जितना अपनी निःसहायता पर पर्दा डालकर उसे छिपाना, उसे अस्वीकार करना – 'सबकुछ सही है' अथवा 'हमें व्यवहारिक होना चाहिए, माँसाहार, व्यभिचार, नशे और जुए के बिना इस संसार में रहना सम्भव नहीं है।'

ऐसा कहकर न तो हम इन अवांछित कार्यों के परिणामों से बच सकते हैं और न ही अपने हृदय को इन प्रवृत्तियों से मुक्त कर सकते हैं। हमें साहस के साथ सत्य का सामना करना होगा। ''हाँ, मुझमें ये अनर्थ, आसक्तियाँ और बुरी आदते हैं।'' ऐसा करते ही आप पायेंगे कि आपने काम रूपी शत्रु के विरुद्ध पचास प्रतिशत लड़ाई जीत ली है। शेष विजय निर्भर करती है उन अनुकूल कार्यों को स्वीकारने पर जो इस युद्ध में सहायक हैं, और उन प्रतिकूल कार्यों को त्यागने पर जो इसके लिए विरोधक हैं।

सहायक कार्य हैं भक्तों का संग, शास्त्रों का अध्ययन, भगवन्नाम का जप और भगवद्प्रसाद का सेवन। विरोधक कार्य हैं ऐसे लोगों और वस्तुओं का संग त्यागना जो हमारी कामवासनाओं को जाग्रत कर हमारे ज्ञान को ढक देते हैं।

और इसका परिणाम होगा वह शुद्धता जो वास्तविक बल है। केवल तभी हम ज्ञान को अपने व्यवहार में ला पायेंगे और अपनी वाणी और व्यवहार द्वारा अन्यों के हृदयों को भेद ज्ञान को अपने जीवन में उतारने में सहायता कर पायेगी। अन्यथा न तो संसार में ज्ञान की पुस्तकों से भरे पुस्तकालयों का अभाव है, और न ही अपनी वाक्चतुराई से उन्हें प्रस्तुतकर लोगों को आकर्षित करने वाले थोथे चनों* का।

–सम्पादक

('थोथा चना बाजे घना', ऐसे लोगों के लिए लोकोक्ति जो आवाज तो बहुत करते हैं किन्तु लोगों पर स्थाई सकारात्मक प्रभाव नहीं डाल पाते।)